पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

OCT 2025
अंक - 20

482

मंहगाई का भूत
3

मंहगाई का भय
4

प्रकाशन की तिथि - 31-10-2025 पोस्ट की तिथि - 16-11-2025

सिंहावलोकन

6 **मंहगाई समस्या या समाधान**

8 **प्रश्नोत्तर**

9 **डॉ. अशोक पारख (अर्थशास्त्री)**

17 **मनोज कुमार द्विवेदी, ऋषिकेश,**

19 **पत्रोत्तर**

20 **उत्तरार्थ**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

मंहगाई का भूत

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

भूत और भय एक दूसरे के पूरक होते हैं। भूत से भय होता है और भय से भूत। भूत का अस्तित्व लगभग न के बराबर ही होता है और इसलिए उसका अच्छा या बुरा प्रभाव भी नहीं होता, किन्तु लगभग शत-प्रतिशत व्यक्ति भूत से भयभीत रहते हैं। यहां तक कि छोटे बच्चे भी, क्योंकि बचपन से ही बच्चों में भूत का अस्तित्व बना दिया जाता है।

ठीक भूत के समान ही स्थिति मंहगाई शब्द की भी है। न मंहगाई है, न ही आज तक उसका आम जन-जीवन पर कोई बुरा प्रभाव पड़ा, किन्तु स्वतंत्रता के तत्काल बाद से ही आज तक शत-प्रतिशत भारत मंहगाई से चिंतित है। सन सैंतालीस से आज तक मैं मंहगाई बढ़ने की बात सुनता रहा हूं तथा आज भी सुन रहा हूं। किन्तु जब मैं प्रचार से दूर होकर वास्तविकता को खोजने लगा, तब मैंने देखा कि मंहगाई बिल्कुल ही अस्तित्वहीन प्रचार है और षड्यंत्रपूर्वक जान-बूझकर समाज में मंहगाई का भय पैदा किया जाता है। लगभग हर सरकार मंहगाई को कम करते-करते बदल भी जाती है। फिर भी मंहगाई एक ऐसा काल्पनिक दैत्य है जो लगातार शक्तिशाली होते हुए दिखता है।

मान्य सिद्धांत है कि किसी वस्तु की तुलना जिस आधार वस्तु से होती है, उस आधार वस्तु को स्थिर होना चाहिए। बहुत प्राचीन समय से सोने को आधार माना गया था, जो बाद में भारत की स्वतंत्रता तक चांदी के रूप में स्थिर रहा। स्वतंत्रता के बाद आधार बदल गया और वह रास्ते से गुजरते-गुजरते सरकारी मान्यता प्राप्त कागज तक आ गया। मैं नहीं समझ सका कि सन सैंतालीस में एक चांदी के रुपये के बदले जितना सामान मिलता था, उसकी तुलना में आज के रुपये से उतना सामान कैसे संभव है। स्पष्ट है कि रुपये ने स्थान बदल लिया और उस स्थान-परिवर्तन को धूर्त लोग मंहगाई के नाम से प्रचारित करते रहे।

मंहगाई और मुद्रा-स्फीति अलग-अलग शब्द हैं। मुद्रा-स्फीति का अर्थ होता है नगद रुपये पर अधोघोषित कर, और उसका प्रभाव होता है नगद रुपये का मूल्य ह्रास। इसका वस्तुओं की कीमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्य किसी भी परिस्थिति में मंहगाई नहीं बढ़ती, क्योंकि वस्तु मंहगी हो सकती है और वस्तुओं के औसत को मंहगाई कहा जाता है — जो सिर्फ मुद्रा-स्फीति होती है, मंहगाई नहीं। सन 47 में एक मजदूर को दिनभर की मजदूरी के बदले में जितना अनाज दिया जाता था, उसकी तुलना में आज लगभग 10 से 12 गुना तक अधिक अनाज दिया जाता है। कई बार प्रश्न करने के बाद भी किसी ने यह उत्तर नहीं दिया कि स्वतंत्रता के बाद अनाज सस्ता हुआ या नहीं, और श्रम मंहगा हुआ या नहीं। यदि हम सम्पूर्ण भारत के जीवन-स्तर का आकलन करें तो जीवन-स्तर में तैंतीस प्रतिशत गरीब लोगों के बीच लगभग दो गुना सुधार हुआ है। यदि मंहगाई है तो या तो उसका दुष्प्रभाव नहीं है या उसका अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। फिर भी स्पष्ट दिखते हुए भी मंहगाई और उसके दुष्प्रभाव की चर्चा निरंतर जारी है। देश विकास कर रहा है। संभव है कि तैंतीस प्रतिशत गरीब लोगों की विकास दर एक हो, मध्यम वर्ग की 6 हो, उच्च वर्ग की 12 हो, किन्तु विकास दर तो लगातार जारी है। मैं नहीं समझा कि यदि मंहगाई है और उसका दुष्प्रभाव भी है, तो तैंतीस प्रतिशत गरीब तबके की विकास दर ऋणात्मक क्यों नहीं है।

मंहगाई का अस्तित्व न होते हुए भी शत-प्रतिशत लोगों को मंहगाई दिखती है। वह एक षड्यंत्र है। जब किसी व्यक्ति का वेतन बढ़ता है तो एकाएक उसे अधिक वस्तुएं उपलब्ध होने लगती हैं। मुद्रा-स्फीति बढ़ने से एक वर्ष में उसे वह वस्तुएं घटते-घटते फिर वहीं आ जाती हैं जहां उसे पहले मिलती थीं। फिर से उसका वेतन बढ़ता है और फिर वही क्रम शुरू हो जाता है। सन 47 में किसी व्यक्ति को कुल वेतन में एक किलो अनाज मिलता था, तो आज वेतन 300 गुना बढ़ गया है और मुद्रा-स्फीति भी 200 गुना बढ़ गई है। इसका अर्थ हुआ कि यदि उसकी क्रय-शक्ति और वस्तुओं के मूल्य 200 गुने बढ़े तो मंहगाई कहां है। सच्चाई यह है कि सोना, चांदी और जमीन मंहगे हुए हैं। इसी तरह दाल, खाद्य तेल, डीजल, पेट्रोल बहुत मामूली मंहगे हुए हैं। अनाज, कपड़ा, दूध, शक्कर — सभी आवश्यक वस्तुएं लगभग आधे मूल्य की हो गई हैं और इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएं, आवागमन तो मिट्टी के मोल हो गए हैं। फिर भी मंहगाई का प्रचार आज भी जारी है।

स्वतंत्रता के पूर्व भी श्रम के साथ बुद्धिजीवियों का लगातार षड्यंत्र चलता रहता था। सवर्ण और शूद्र का जातिगत आधार इसी के ऊपर टिका हुआ था। आज भी वह आधार शब्द बदलकर उसी तरह कायम है। भारत की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में बुद्धिजीवियों का एकाधिकार है। उस एकाधिकार के अंतर्गत वे लोग उपभोक्तावादी संस्कृति को विस्तार देते हैं — उत्पादन का मूल्य न बढ़े और उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति तथा आय निरंतर बढ़ती रहे। इसका पूरा-पूरा प्रचार लगातार बुद्धिजीवियों और पूंजीपतियों द्वारा किया जाता रहा है। इन्हीं के प्रतिनिधि सत्ता में होते हैं, और इन्हीं के प्रतिनिधियों का प्रचार-माध्यमों पर भी एकाधिकार होता है। यही लोग विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका पर भी कब्जा जमाए रहते हैं। स्वतंत्रता से लेकर आज तक इन लोगों ने मिलजुलकर मंहगाई का भूत खड़ा किये रखा। विशेषकर सरकारी

कर्मचारी अपना वेतन बढ़वाने के लिये, नेता सत्ता-परिवर्तन का खेल खेलने के लिये तथा पूंजीपति आर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाने के लिये मंहगाई का प्रचार करते हैं, और इन तीनों द्वारा धन और सुविधा के लालच में मीडिया इसको हवा देती है।

यदि ठीक से विचार किया जाये तो मंहगाई अस्तित्वहीन शब्द है। मंहगाई आभासी है, भावनात्मक है, इसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं। सन 39 से 47 तक क्रय-शक्ति की तुलना में वस्तुओं के मूल्य 12 गुना अधिक बढ़ गए थे — तो उस समय वास्तव में मंहगाई बढ़ी थी और लोग परेशान थे, किन्तु स्वतंत्रता के बाद स्थिति ठीक उलटी हो गई। यदि रुपया 200 गुना गिरा है और सन 47 में एक रुपये का एक किलो सामान मिलता था, आज 200 रुपये में मिल रहा है तो स्पष्ट समीकरण है कि वस्तु का मूल्य समतुल्य है, किन्तु उसे मंहगाई के साथ जोड़ा जाता है। आज तक किसी अर्थशास्त्री ने यह नहीं बताया कि स्वतंत्रता के बाद आज तक मंहगाई कितने गुना बढ़ी और उसका कितने गुना दुष्प्रभाव पड़ा? न तो उनके पास उत्तर है और न ही वे इस विषय पर चर्चा करना चाहते हैं। मैं टीवी देखता हूं तो मोटी-मोटी बड़े घरों की औरतें सड़क पर मंहगाई का रोना रोती दिखती हैं। उनका रोज बजट ही बिगड़ा रहता है। उन्हें क्या पता कि किसान कितनी मेहनत से उत्पादन करता है, कितनी मेहनत से वह लाकर बेचता है, और उस उत्पादन और बिक्री पर भी वह टैक्स देता है। टैक्स और उत्पादन की कीमत पर ये मोटे लोग और उनके एजेंट टीवी वाले मंहगाई का हल्ला करते हैं। सरकारें जान-बूझकर घाटे का बजट बनाती हैं जिससे मंहगाई का अस्तित्व दिखता है।

कल्पना करिए कि यदि वर्तमान सरकार एकाएक घोषणा कर दे कि सौ रुपये का मूल्य भविष्य में एक रुपया होगा, तो यथार्थ में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं पड़ेगा। सबकुछ वैसा ही रहेगा और सारी वस्तुओं का मूल्य सौ गुना घट जाएगा। क्या आप मानेंगे कि मंहगाई खत्म हो गई? इसका अर्थ हुआ कि रुपये के मूल्य-परिवर्तन से मंहगाई का कोई संबंध नहीं है। मंहगाई का संबंध तो तब है जब औसत व्यक्ति की क्रय-शक्ति की तुलना में आम लोगों की सामान्य उपभोक्ता वस्तुएं कम उपलब्ध होने लगें। वर्तमान समय में वस्तु-स्थिति इससे ठीक विपरीत है और मंहगाई का हल्ला हो रहा है। यदि सरकारों की नीयत ठीक हो और वे घाटे का बजट बनाना बंद कर दें तो मंहगाई का हल्ला अपने आप खत्म हो जाएगा। किन्तु सरकारों को लोक-हित की जगह लोक-प्रिय बजट बनाने की जल्दी रहती है, और इसलिए समाज को धोखा देने के लिये घाटे का बजट बनाती हैं। सभी सरकारें जानती हैं कि मंहगाई शब्द पूरी तरह असत्य है, किन्तु विपक्ष मंहगाई बढ़ने का हल्ला करता है और सत्ता पक्ष मंहगाई घटाने का आश्वासन देता है — जबकि दोनों ही बातें झूठ होती हैं। स्वतंत्रता से लेकर आज तक भारत की आम जनता इस मंहगाई के प्रचार से भयभीत रहती है और धूर्त लोग इससे लाभान्वित होते रहते हैं। इस प्रचार को चुनौती देने की आवश्यकता है।

मंहगाई का भय

आज पूरे भारत में मंहगाई सबसे बड़ी समस्या के रूप में स्थापित हो चुकी है। छोटे से छोटा आदमी भी मंहगाई से परेशानी अनुभव कर रहा है और बड़ा से बड़ा आदमी भी। पान की दुकान में भी मंहगाई पर ही चर्चा केंद्रित है और हवाई जहाज में भी। मुझे तो ऐसा कोई मिलता ही नहीं जो मंहगाई से त्रस्त न हो। वैसे तो स्वतंत्र भारत के 75 वर्षों में हमेशा ही मंहगाई से परेशानी अनुभव की गई, किन्तु चुनावों के समय आम आदमी को यह अनुभव और दिनों की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही या तो महसूस होने लगता है या महसूस कराने की परंपरा रही है। इस वर्ष भी मंहगाई का एक भूत के रूप में स्थापित होना यह सिद्ध करता है कि अवश्य ही आम चुनाव बहुत नजदीक हैं।

मेरे अपने साथी भी मंहगाई से त्रस्त हैं। कुछ साथी तो बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। वे न मंहगाई की परिभाषा करना चाहते हैं न विरोध में कोई बात सुनना चाहते हैं। बस टीवी में बढ़ी मंहगाई का सरकारी आंकड़ा सुनते ही उनकी कमर टूटने लगती है और उनका भाषण शुरू हो जाता है। फिर तो वे इस संबंध में कुछ सुनते ही नहीं। मुझे मंहगाई के संबंध में चर्चा में सुखद आश्चर्य हुआ जब भारतीय जनता पार्टी के एक प्रमुख व्यक्ति से अस्पताल में मैं मिलने गया और मंहगाई पर बात छिड़ गई। उन्होंने स्वयं माना कि यह एक राजनीतिक हथकंडा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। उन्होंने इस संबंध में और विस्तृत विवेचना की। चुनाव वर्ष में मंहगाई जैसे संवेदनशील मुद्दे पर संतुलित विवेचना से मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा भाव ही उत्पन्न हुआ, अन्यथा कांग्रेसी कार्यकर्ता तक स्वीकार करता है कि वह मंहगाई से परेशान है।

प्रश्न उठता है कि मंहगाई की परिभाषा क्या है? मुद्रा स्फीति और मंहगाई में फर्क क्या है? मैंने पूर्व में भी बहुत गहन विचार किया था और अब पुनः गंभीरता से सोचा तो पाया कि मंहगाई एक अस्तित्वहीन शब्द है, जिसका कभी कोई अच्छा या बुरा प्रभाव नहीं होता। वास्तविक शब्द तो है मुद्रा स्फीति, जिसका अर्थ होता है नगद रुपये पर अघोषित कर, और प्रभाव सिर्फ उसी पर होता है जिसके पास नगद रुपया हो। कल्पना करिए कि किसी व्यक्ति को अपने एक दिन का वेतन सौ रुपया मिलता है और उसे सौ रुपये में दस किलो औसत वस्तुएं प्राप्त होती रहती हैं। कुछ दिनों के बाद उसकी मजदूरी तो एक सौ दस रुपया हो गई और मुद्रा स्फीति बढ़ने के कारण कुल वस्तुएं दस किलो ही मिलीं, तो उसे मंहगाई महसूस होने लगती है और उसकी कमर टूटने लगती है, जबकि वेतन वृद्धि और मूल्य वृद्धि किसी मंहगाई के परिणाम न होकर मुद्रा स्फीति के

परिणाम हैं। और मुद्रा स्फीति का तब तक कोई प्रभाव नहीं होता जब तक मूल्यों के अनुपात में उसका वेतन बढ़ता रहे। इस तरह मंहगाई न कभी आई है, न आएगी, क्योंकि वेतन वृद्धि के अनुपात में मूल्य वृद्धि हमेशा ही कम रही है।

स्वतंत्रता के बाद यदि आज तक का आकलन करें भी तो मुद्रा स्फीति करीब सत्तर गुनी बढ़ी है, जबकि मजदूरी डेढ़ सौ गुनी और कर्मचारियों का वेतन तीन सौ गुना करीब बढ़ा है। इसके बदले में सोना, चांदी, जमीन अधिक बढ़े हैं। दालें, खाद्य तेल, कृत्रिम ऊर्जा आदि स्थिर हैं। अनाज, कपड़ा आदि आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं सस्ती हुई हैं, और टेलीफोन, रेडियो, घड़ी आदि तो कौड़ियों के भाव बिक रहे हैं। सोचने की बात है कि स्वतंत्रता के बाद ऐसी कौन-सी वस्तुएं मंहगी हुईं जिनसे आम लोगों की कमर टूट गई? खाद्य पदार्थ और कपड़ा तो सस्ता हुआ है, और सोना-चांदी-जमीन मंहगी होने से किसी आम आदमी की कमर टूटती नहीं। फिर इतना हल्ला क्यों? हल्ला इस लिए नहीं होता है कि मंहगाई से जनजीवन पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। हल्ला तो इस बात का होता है कि व्यक्ति को आज जो सुविधा प्राप्त थी, उसमें कोई कटौती हो रही है। यदि दस वर्ष पहले फोन का चार्ज दस रुपया था और आज एक रुपया है तो ठीक है। यदि कल दो रुपया हो जाए तो फोन भी मंहगा घोषित हो जाएगा और मंहगाई में शामिल हो जाएगा। मैं तो साठ वर्ष पूर्व भी मंहगाई का ऐसा ही प्रचार और हल्ला सुनता था और आज भी वैसा ही है। मुझे तो हल्ले में कभी फर्क नहीं दिखा।

फिर भी इस बार की मंहगाई का कुछ अलग प्रभाव है। इस बार ऐसी वस्तुएं मंहगी हुई हैं जो आम आदमी के उपयोग की हैं - जैसे अनाज, दाल, खाद्य तेल आदि। किसी वस्तु के मंहगा होने के चार कारण हो सकते हैं -

1.मुद्रा स्फीति बढ़े,
2.वस्तु का उत्पादन कम हो,
3.वस्तु का निर्यात अधिक हो,
4.वस्तु का उपयोग अधिक होने लगे।

मुद्रा स्फीति का प्रभाव होता नहीं क्योंकि आम तौर पर मुद्रा स्फीति की तुलना में वेतन भी अधिक बढ़ता रहा है और श्रम मूल्य भी। जो लोग कहते हैं कि आज वस्तुओं के मूल्य बढ़े हैं और वेतन छह माह बाद बढ़ेगा, तब तक तो उस आदमी का कचूमर ही निकल जाएगा — वे बिल्कुल झूठ बोलते हैं, क्योंकि यह कैसे माना गया कि वेतन पहले बढ़ा या मूल्य। यदि मैं कहूं कि छह माह पूर्व वेतन बढ़ा और आज मूल्य, तो इसमें गलत क्या है?

अंडा पहले कि मुर्गी - यह विवाद न कभी सुलझा है न कभी सुलझेगा।

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत की कुल विकास दर 7 प्रतिशत है, जो सम्पन्नों की 14 प्रतिशत और बिल्कुल गरीबों की 1 प्रतिशत करीब है। यदि मुद्रा स्फीति के प्रभाव से गरीब आदमी को आज ग्यारह प्रतिशत सामान कम मिल रहा है तो विकास दर का उस व्यक्ति पर कितना प्रभाव पड़ता है? अर्थात वह गरीब आदमी ग्यारह प्रतिशत मंहगाई के बाद भी विकास कर रहा है या उसका जीवन स्तर ग्यारह में एक घटकर दस प्रतिशत नीचे जा रहा है?

यदि हम वस्तु के उत्पादन की कमी की बात करें तो जिन वस्तुओं की भारी मूल्य वृद्धि हुई है, उनके उत्पादन में कोई विशेष कमी नहीं आई है। यदि हम मांग वृद्धि और क्रय शक्ति की वृद्धि की सोचें तो गेहूं, चावल, दाल, खाद्य तेल का मांग-वृद्धि या क्रय शक्ति बढ़ने से कोई संबंध नहीं। सीमेंट और लोहा का इससे आंशिक संबंध है। यदि हम आयात-निर्यात पर गंभीरता से विचार करें तो मंहगाई का सारा खेल इसी पर निर्भर है। सरकार कठपुतली के समान आयात-निर्यात को नचाती रहती है, जिसका प्रभाव मूल्यों पर पड़ता है। सरकार साम्यवादियों को नाराज नहीं करना चाहती और साम्यवादी खाड़ी देशों के हितों की भारत में लम्बे समय से देखभाल करते रहते हैं। भारत में डीजल-पेट्रोल के मूल्य न बढ़ें, इन सबकी खपत कम न हो, इन सबका आयात भी कम न हो - इसकी सर्वाधिक चिंता ये बेचारे वर्षों से पूरी ईमानदारी से करते रहे हैं। इस कार्य के लिए तो ये लोग सरकार तक को कुर्बान करने के लिए तैयार रहते हैं, और आप रोज-रोज का विवाद सुन भी रहे होंगे कि बिजली की उपलब्धता बढ़ने से होने वाले डीजल-पेट्रोल के दुष्प्रभाव के लिए बेचारों को कितना संघर्ष करना पड़ रहा है। यह कोई साधारण संघर्ष नहीं है।

अब आप विचार करिए कि यदि डीजल-पेट्रोल की खपत कम नहीं करनी है तो आयात करना ही होगा और उसी मुताबिक दुगने-चौगुने मुंहमांगे दाम भी उन्हें चुकाने होंगे, और उसके लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्यात भी करना होगा - भले ही भारत की जनता पर उसका कुछ भी और कितना भी प्रभाव क्यों न पड़ता हो। यही और सिर्फ यही एकमात्र कारण है जिसके कारण इस बार कुछ आवश्यक वस्तुओं के दाम इस तरह बढ़े हैं। साम्यवादी इस सहायता के लिए खाड़ी देशों से धन लेते हैं या नहीं, यह बात तो नहीं मालूम, किन्तु शेष अन्य दलों को इस तेल के खेल से धन मिलना अब कोई छिपी बात नहीं। इस तरह धन के मामले में तो सबकी सहानुभूति खाड़ी देशों के साथ रहती ही है, और बदनाम बेचारे अकेले वामपंथी रहते हैं, क्योंकि खाड़ी देशों को अमेरिका के विरुद्ध खड़ा रखना भी तो आसान काम नहीं है। मेरे विश्लेषण अनुसार मंहगाई का कोई अस्तित्व न होते हुए भी भाजपा पार्टी उसका विरोध नहीं कर पा रही, क्योंकि उसने ही तो सिर्फ प्याज और टमाटर की मंहगाई को मुद्दा बनाकर चुनाव जीत लिया था। अब यदि यह मुद्दा उसके विरुद्ध जा रहा है तो वह किस मुंह से वास्तविक तर्क समाज के समक्ष रखे, और कौन उस बात को सुनेगा? कुछ आवश्यक वस्तुओं की मूल्य वृद्धि का दोष भी भाजपा आयात-निर्यात की अपनी नीति को नहीं दे सकती, क्योंकि उसे भी चुनाव लड़ना है और यह आयात-निर्यात ही तो उसके लिए जर्सी गाय का काम करती है।

सरकारी कर्मचारी यह पोल खोलने को तैयार नहीं क्योंकि मंहगाई का प्रचार उन्हें कई गुना अधिक वेतन बढ़वाने में सहायक होता है। अन्य अनेक पत्रकार या सामाजिक कार्यकर्ता इस असत्य को ही सत्य मान बैठे हैं। उन्हें न मंहगाई का पता है न तेल के खेल से कुछ लेना-देना है। जो हल्ला समाज में उठ रहा है, उसके साथ अपने को जोड़ लेना उनकी मजबूरी है। मैं चाहता हूं कि मंहगाई के मुद्दे पर समाज में व्यापक विचार मंथन हो और सच समाज के समक्ष प्रकट हो।

मंहगाई एक अस्तित्वहीन शब्द है, जिसका कभी कोई अच्छा या बुरा प्रभाव नहीं होता। वास्तविक शब्द तो है मुद्रा स्फीति, जिसका अर्थ होता है नगद रुपये पर अघोषित कर, और प्रभाव सिर्फ उसी पर होता है जिसके पास नगद रुपया हो।

स्वतंत्रता के बाद यदि आज तक का आकलन करें भी तो मुद्रा स्फीति करीब दो सौ गुनी बढ़ी है, जबकि मजदूरी तीन सौ गुनी और कर्मचारियों का वेतन पांच सौ गुना करीब बढ़ा है। इसके बदले में सोना, चांदी, जमीन अधिक बढ़े हैं। दालें, खाद्य तेल, कृत्रिम ऊर्जा आदि स्थिर हैं। अनाज, कपड़ा आदि आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं सस्ती हुई हैं, और टेलीफोन, रेडियो, घड़ी आदि तो कौड़ियों के भाव बिक रहे हैं।

मंहगाई समस्या या समाधान

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ के प्रतिष्ठित अखबार दैनिक नवभारत दिनांक इकतीस दिसंबर दो हजार नौ में बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में प्रचार छपा था, जिसका शीर्षक था – "मंहगाई मार गई।" अखबार ने निष्कर्ष को तात्कालिक समाचार के रूप में प्रकाशित न करके वर्ष की सबसे बड़ी समस्या के रूप में प्रचारित किया है। एक तुलनात्मक मूल्य सूची भी प्रकाशित की है, जिसमें पाँच वर्ष पूर्व चावल ग्यारह रुपये, पिछले वर्ष चौदह रुपये और अभी तीस रुपये प्रति किलो बताया गया है। उसमें इसी तरह शक्कर, आलू, प्याज, दालें, खाद्य तेल आदि के भी मूल्यों की तुलना करके प्रमाणित करने की कोशिश की गई है कि "मंहगाई मार गई।"

मंहगाई सिद्ध करने का एक आधार सरकारी आँकड़ा भी बताया गया, जिसके अनुसार एक वर्ष में जरूरी वस्तु मूल्य सूचकांक में उन्नीस प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मैं तत्काल ही अखबार लेकर अपने अंबिकापुर शहर के बाजार में मंहगाई का पता करने निकल पड़ा और पता करने पर मालूम हुआ कि आज बाजार में चावल चौदह रुपये किलो खुदरा बिक रहा है। शक्कर, दाल और तेल के भावों में तो ज्यादा अंतर नहीं था, किन्तु गेहूँ का जो आटा बीस रुपये बताया गया है, वह बाजार में चौदह रुपये प्रति किलो उपलब्ध है। पूछने पर यह भी पता चला कि खुदरा बाजार में टमाटर तीन रुपये प्रति किलो मिल रहा है, जो पिछले वर्ष इसी अवसर पर अंबिकापुर में ही दस रुपये किलो उपलब्ध था। अखबार में प्याज की मूल्य वृद्धि को तो आधार बनाया गया, किन्तु टमाटर की कहीं चर्चा नहीं हुई कि बेचारा सड़कों पर मारा-मारा फिर रहा है। ऐसा असत्य सिर्फ नवभारत अखबार में ही नहीं है। सच्चाई यह है कि सभी अखबार और सभी टी.वी. चैनल किसी न किसी रूप में यह असत्य लगातार प्रचारित कर रहे हैं कि मंहगाई बेतहाशा बढ़ी है और मंहगाई से आम जन-जीवन प्रभावित हो रहा है। एक वर्ष पूर्व का यदि अखबार निकालकर देखें तो उसमें भी मंहगाई का रोना इसी तरह रोया गया है। उसमें मंहगाई के लिये आकलन करते समय गेहूँ, चावल और प्याज गायब था। उसमें आँकड़ा था सीमेंट, लोहे का सरिया और टमाटर। वर्तमान में जिस मूल्य सूचकांक का हवाला दिया गया है, वह उस समय कम होने से एक दूसरी तरह का सूचकांक बारह प्रतिशत मूल्य वृद्धि का लिखा गया था। विदित हो कि उस समय दूसरा सूचकांक बहुत कम था, तो उसके स्थान पर तेरह प्रतिशत वाले सूचकांक का उपयोग किया गया और इस समय वह सूचकांक घटकर चार आ गया है, तो सूचकांक ही बदल दिया गया। दोनों ही आँकड़े सरकारी हैं और दोनों ही आँकड़े मूल्य सूचकांक हैं। आम आदमी बेचारा इस बाजीगरी को क्या जाने।

तीन वर्ष पूर्व का अखबार निकाला तो उसमें भी "मंहगाई से जन-जीवन त्रस्त, डीजल पेट्रोल की भारी मूल्य वृद्धि।" उसमें आँकड़े देकर लिखा गया था कि किस तरह डीजल पेट्रोल की मूल्य वृद्धि का आम जन-जीवन पर प्रभाव पड़ रहा है। इस मूल्य वृद्धि के प्रभाव से सभी वस्तुओं की उत्पादन लागत बढ़ गई है, गैस के दाम बढ़ने से गृहिणियों का मासिक बजट गड़बड़ा गया है, आवागमन महँगा होने से वस्तुओं का आना-जाना प्रभावित हो रहा है आदि आदि।

तीन प्रकार के समाचार तीन अलग-अलग आधारों पर निष्कर्ष निकालकर प्रचारित किए गए। तीनों में कुछ बातें समान रहीं–

1.तीनों ही निष्कर्ष समाचार में प्रकाशित न होकर प्रचार के रूप में प्रकाशित होते रहे।

2.तीनों ही समाचारों में निष्कर्ष का आधार जानबूझकर बदला गया।

3.तीनों समाचारों के निष्कर्ष एक ही निकाले गए कि "मंहगाई मार गई", अर्थात मंहगाई का सामान्य जन-जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है।

निष्कर्ष निकालने में अभी खाद्य वस्तुओं को आधार बनाया गया, तो पिछले वर्ष लोहा-सीमेंट को और उससे

पहले डीजल-पेट्रोल को। चालाकी तो यहाँ तक की गई कि पिछले वर्ष के सरकारी आँकड़ों को भी इस तरह से बदला गया जैसे कि निष्कर्ष निकालने वाला किसी भी तरह समाज को इस निष्कर्ष तक पहुँचाना ही चाहता था। इस वर्ष तो हद ही हो गई जब टमाटर के भावों को छिपाया गया और गेहूँ, चावल के झूठे भाव प्रकाशित किए गए। चालाकी की गई कि गेहूँ-चावल के प्रकाशित आँकड़े सामान्य जन के उपयोग वाले गेहूँ-चावल से हटकर विशेष किस्म के हैं और निष्कर्ष सामान्य लोगों के लिए निकाला जा रहा है।

प्रश्न उठता है कि ऐसा प्रयत्न कोई एक अखबार न करके सभी अखबार और चैनल कर रहे हैं, और निःशुल्क कर रहे हैं, तो इसका कारण क्या है? मैंने पाया कि इसका सिर्फ एक ही कारण है—भारत के आम नागरिक को ऐसे असत्य पढ़ने-सुनने से राहत और संतोष मिलता है। प्रचार माध्यमों के दुष्प्रचार, राजनेताओं के तर्क और शासन की स्वीकृति के बाद कौन बचता है जो इस धारा के विपरीत शोध करे? यदि शोध भी करे, तो वह कितनों तक पहुँचेगा, और पहुँच भी गया तो कौन विश्वास करेगा? क्योंकि आम आदमी तो पूरी तरह आश्वस्त और विश्वास से भरा है कि—

1.मंहगाई बढ़ रही है।

2.मंहगाई से आम लोगों की क्रय-शक्ति घट रही है।

मुद्रास्फीति साठ वर्षों से बढ़ रही है, यह पूरी तरह सच है, किन्तु मुद्रास्फीति का आम जन-जीवन पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब तक उसके सामान्य उपयोग की वस्तुओं के औसत मूल्य से उसकी औसत आय के तालमेल का संतुलन गड़बड़ न हो जाए।

आम आदमी को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1.निम्न 2. मध्यम 3. उच्च

निम्न वर्ग पर पिछली मंहगाईयों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता था, क्योंकि जिस तरह वस्तुओं के मूल्य बढ़ते हैं, उसी तरह उसका श्रम-मूल्य भी बढ़ता है। तीन-चार वर्ष पूर्व जब राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना शुरू हुई थी, तब उसका मूल्य साठ रुपये प्रतिदिन था। आज सौ रुपये है। इस संबंध में निठल्ले विचारकों के प्रश्न—कि काम नहीं मिलता या भ्रष्टाचार होता है—आदि इसलिए महत्वहीन हैं कि ये बातें सच होते हुए भी साठ रुपये के समय भी मौजूद थीं और आज भी हैं। मध्यम वर्ग पर थोड़ा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उसी अनुपात में उनकी आय नहीं बढ़ती, और उच्च वर्ग पर सर्वाधिक प्रभाव होता है क्योंकि उसका तो सारा ढाँचा ही डीजल, पेट्रोल, बिजली या लोहा-सीमेंट, आवागमन पर टिका है। यदि इनकी मूल्य वृद्धि हो तो वह मंहगाई का हल्ला कराने की योजना बनाता है, और उसके सबसे सफल आधार हैं वेतनभोगी कर्मचारी, राजनेता और मीडिया। बिना मंहगाई के मंहगाई सिद्ध करने के लिए ये तीनों ही तिकड़म करते रहते हैं। इस सारी तिकड़म से सर्वाधिक प्रभावित होता है किसान। उस बेचारे की वस्तुओं का मूल्य स्वाभाविक रूप से भी बढ़ने नहीं दिया जाता। या तो सरकार उस मूल्य वृद्धि को कानून बनाकर रोक देती है या ऐसी वस्तुओं का आयात करके। साठ वर्षों से उत्पादकों के विरुद्ध मंहगाई रूपी शस्त्र से लगातार आक्रमण किया गया। किसानों ने धीरे-धीरे खेती कम कर दी और अन्य नौकरी अथवा छोटे उद्योग तलाशने लगे। सम्पूर्ण भारत के गाँवों के किसान या मजदूर स्वयं या उनकी संताने लगातार शहरों की ओर पलायन कर रही हैं, यह जगजाहिर है। कई किसान तो बेचारे स्वर्ग सिधार गए, खासकर महाराष्ट्र में, क्योंकि वहाँ की सरकार ने उन्हें बाहरी लोगों द्वारा जमीन खरीदने पर रोक का एक तोहफा भी दे रखा है। खेती करना उनकी मजबूरी है। छत्तीसगढ़ सरकार भी अब अपने किसानों को वैसा ही तोहफा देने का अध्ययन करा रही है। अभी दो तोहफे उसने दिए भी हैं—

1.अपने गन्ने के गुड़ बनाने पर रोक के रूप में, और

2.दूसरा जो उसने अभी-अभी एक जनवरी को किसानों को दिया है कि उनके हर प्रकार के उत्पादन पर अब बिक्री कर सरकार चार प्रतिशत से बढ़ाकर पाँच प्रतिशत वसूल करेगी।

अभी-अभी कृषि उत्पादों के मूल्यों में जो वास्तविक वृद्धि हुई है, किसानों के उस लाभ पर सरकार की बहुत तेज नज़र लगी है। कभी गेहूँ, चावल, दाल, खाद्य तेलों में वृद्धि इस तरह नहीं हुई थी जैसी इस बार है, तो सरकार क्यों चूके?

साठ वर्षों में पहली बार हुआ है जब आम उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में औसत से अधिक वृद्धि हुई है, अन्यथा इसके पूर्व तो कृषि उत्पाद ज़मीन सूँघते रहते थे और औद्योगिक उत्पादन की मूल्य वृद्धि को ही मंहगाई कह-कह कर राजनीतिक खेल चलता रहता था। इस खेल का सीधा प्रभाव पड़ा कृषि उत्पादन पर, जिसे उपभोक्ताओं और उनकी व्यवस्था ने अनदेखा किया। बड़ी मात्रा में किसानों की आत्महत्याओं से भी किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। प्रभाव पड़ा तब जब किसानों ने खेती कम करके दूसरी राह पकड़नी शुरू की और ईश्वर ने सूखे का एक झटका दिया। अब सरकार के समक्ष भी किसानों के सामने जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। विदेशों में भी कोई अच्छी स्थिति नहीं कि अधिक आयात कर लें। सरकारी खेती तो और भी अधिक नुकसानदेह होती है। हार-थक कर कृषि उत्पादों की स्वाभाविक मूल्य वृद्धि को चुपचाप होने को ही समाधान माना जा रहा है। सरकार राजनीतिक हानि से बचने के लिए मंहगाई के विरुद्ध नकली चिल्लाहट का ढोंग कर रही है, अन्यथा उसे कुछ-कुछ आभास होने लगा है कि उत्पादन वृद्धि ही समस्याओं का एकमात्र समाधान है, और उत्पादन वृद्धि के लिए कृषि उत्पादों की वास्तविक मूल्य वृद्धि के अलावा कोई अन्य उपाय है ही नहीं। मंहगाई

किसी भी रूप में कोई समस्या न होकर समस्याओं का समाधान है। जो लोग खेती के अलावा अन्य कार्यों में बहुत कमाई करने में लगे हैं, उनके चिल्लाने से न तो विदेश सस्ता अनाज दे सकता है, न ही किसान खेती की ओर लौटने की मूर्खता कर सकता है। दूध की मूल्य वृद्धि का रोना रोने वाले क्यों नहीं गाय-भैंस पालने का काम शुरू कर लेते हैं? कौन रोकता है उन्हें कीचड़ में जाकर खेती करने से? शब्दों के बीज बोकर मोटी-मोटी तनख्वाहों की फसल काटने की खेती करने वालों को क्या पता है कि मंहगाई के हल्ले का उत्पादन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। वे तो सिर्फ दो-चार सम्पन्न गृहिणियों का इंटरव्यू छाप कर पूरे भारत का दुख-दर्द समझ जाया करते हैं। किसी किसान या दूध उत्पादक की पत्नी का इंटरव्यू लेकर देखते क्यों नहीं कि उसका दुख-दर्द क्या है।

मैंने स्वयं पैंतीस वर्षों तक खेती करने के बाद सन् पचानवे में लुट-पिटकर खेती को अलविदा कहा है और तब आज आपके समक्ष शब्दों के बीज बो रहा हूँ। और वह बीज भी वेतनों की फसल काटने के लिए नहीं, अन्यथा मैं भी वैसा ही मंहगाई का रोना रोता जैसे अन्य लोग रो रहे हैं।

मंहगाई के दुष्प्रचार के विरुद्ध मजबूती से कलम उठाने की जरूरत है। धारा के विपरीत चलने का खतरा तो है, किन्तु सच को सच कहना तो पड़ेगा ही। रमण सिंह जी चुनावों के पूर्व तक तो पूरी तरह किसानों के पक्ष में थे क्योंकि उन्हें ज्यादा राजनीतिक तिकड़म नहीं आती थी। चुनावों के बाद भी वे एक वर्ष तक तो उत्पादन के महत्व को समझते रहे, किन्तु अब वे कुछ-कुछ राजनीतिक तिकड़म समझने लगे हैं। किसानों को धान का भारी-भरकम बोनस देना उनकी गलती थी। पूरे भारत से अलग चलकर आप थक जाएँगे। उस भूल को उन्होंने सुधार लिया। गन्ने की गुड़ बनाने की स्वतंत्रता पर रोक आदि ऐसे आत्मघाती कदम हैं जो किसानों को निरुत्साहित करेंगे। वे जिस तरह किसानों द्वारा अपनी जमीन की बिक्री पर रोक लगाने की सोच रहे हैं, वह भी उनकी स्वतंत्रता पर कुठाराघात ही होगा।

उत्पादक और उपभोक्ता एक-दूसरे के पूरक हैं, किन्तु पिछले सत्तर वर्षों से व्यवस्था ने हमेशा उत्पादकों को उपभोक्ताओं का पूरक बनाकर रखने की कोशिश की है, जिसके दुष्परिणाम आज दिख रहे हैं। अब भी व्यवस्था चेत जाए तो अच्छा होगा, अन्यथा किसान अब कुछ-कुछ समझना शुरू कर रहा है, जो वर्ग-विवाद का कारण बन सकता है।

पत्रोत्तर

1. शिवदत्त बाघा - बाँदा, उ.प्र. (मई 2014 का प्रश्न)

प्रश्न – मेरे करीब आग जल रही है, उसकी तपिश मैं महसूस कर रहा हूँ। रात के अंधेरे की पीड़ा और दिन के उजाले का सुखद अनुभव भी मुझे हो रहा है। इस सच्चाई को किसी भी तर्क द्वारा झुठलाने का कोई उपाय नहीं है। यही बात आम उपभोक्ताओं द्वारा भोगी जा रही महँगाई पर लागू होती है। महँगाई एक सच्चाई है, जिसके बढ़ने-घटने का कोई नियम नहीं है। हर त्योहार पर उससे संबंधित वस्तुओं, खाद्य पदार्थों के दाम बाजार में बढ़ जाते हैं। इसलिए कि बाजार नियम-मुक्त हो चुका है। वह लुटेरों के हवाले हो चुका है, जहाँ तानाशाह व्यापारी बैठा है, जिसके ऊपर कोई नियंत्रक नहीं है। जो हाल इस देश में राजनीति का है – यानी राजनीति जिस तरह से बेलगाम है और जातिवादी, वंशवादी संविधान राजनीति की इस मनमानी पर केवल पर्दा डालने का काम करती है – उसी भाँति बाजार भी बेलगाम हो चुका है। वैसे आपकी इस बात में दम है कि पहले के मुकाबले वस्तुएँ सस्ती हुई हैं। बचपन में दो रुपये सेर छुहारा मिलता था। तब दस सेर गेहूँ बेचकर एक सेर छुहारा खरीद लेते थे। अब चार किलो गेहूँ बेचकर एक किलो छुहारा खरीद रहे हैं – मतलब छुहारा सस्ता हुआ है।परंतु इसके मुकाबले बादाम, घी महँगे हुए हैं। पहले बीस सेर गेहूँ बेचकर एक सेर बादाम अथवा देशी घी खरीद लेते थे, अब इसके लिए चालीस किलो गेहूँ बेचना पड़ता है – मतलब बादाम, घी महँगा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि सिस्टम पूरा का पूरा इडियट है, कहीं कोई नियम-कायदा नहीं है – "अंधेर नगरी, अबुद्ध राजा है।"पहले बाजार नियमों से बंधा था, कृषि उपज पर आधारित था। सरकारी नौकरों की तनख्वाहें भी कृषि उपज पर आधारित थीं। आज प्राइमरी के अध्यापक को 40–45 हजार रुपये मिल रहा है और स्कूल में ताला लटक रहा है। कारण कि पत्नी राजनीति में है – नगर पंचायत या नगर पालिका अध्यक्ष है। आज का अर्थशास्त्र व अर्थशास्त्री जमीन पर नहीं, हवा में उड़ रहे हैं। जो अर्थशास्त्र कभी मानव जीवन, समाज, राष्ट्र की बेहतरी के लिए समर्पित था, आज लुटेरों की जेब भरने के लिए समर्पित है। अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र – सब गड़बड़ हो गए हैं।

उत्तर – आपने अपने पत्र में महँगाई के संबंध में स्वीकार किया है कि कुछ वस्तुएँ महँगी हुई हैं और कुछ सस्ती। मेरा भी यही कथन है। आपने राजनीतिक और सरकारी व्यवस्था को बहुत ही भ्रष्ट बताया है, किन्तु मैं यह नहीं समझ पाया कि आप ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था के जिम्मे बाजार को भी क्यों

करना चाहते हैं?
पहले भ्रष्टाचार घटे तब बाजार समर्पित हो, या पहले ही बाजार को समर्पित कर दिया जाए? क्यों नहीं सरकार की जगह बाजार पर ग्राम-सभाओं या स्थानीय इकाइयों का नियंत्रण हो? सन 1991 के पहले सरकार ने स्वतंत्रता-पूर्व की बाजार व्यवस्था को अपने हाथ में लिया। उसका परिणाम वर्तमान परिणामों से भी अधिक खराब हुआ। लाइसेंस-कोटा-परमिट ने लोगों के सामान्य जीवन को बेहाल कर दिया था। राशन की लाइन और टेलीफोन की अव्यवस्था जैसे उदाहरण स्पष्ट हैं।
1991 के बाद भी, 1991 के पूर्व का लाभ उठा रहे राज्य-आश्रित साहित्यकार, मीडियाकर्मी, सरकारी कर्मचारी, बुद्धिजीवी, पूँजीपति — सब पुराना सपना देख-देख कर नयी अर्थव्यवस्था को कोसते रहते हैं। किन्तु अब उनका सपना साकार होने वाला नहीं।
सरकार-नियंत्रित अर्थव्यवस्था कितनी घातक है इसका प्रमाण यही है कि जिसके पास सेना, पुलिस, न्याय है, उसी इकाई को अर्थव्यवस्था भी सौंप देना कितना उचित है? अच्छा तो यह होता कि स्वतंत्र बाजार पर सामाजिक अंकुश लगा दें तथा स्वतंत्र अर्थपालिका की माँग करके तानाशाह बनती जा रही राज्य व्यवस्था के पंख कतरने के कार्य की आवाज़ उठे। आशा है कि आप स्वतंत्र बाजार और स्वतंत्र अर्थपालिका के पक्ष में कुछ मुखर होंगे।

2. डॉ. अशोक पारख (अर्थशास्त्री)नवभारत, 6 फरवरी 2016 विचार - महंगाई से असली भारत का चेहरा बदरंग

झूठ तीन प्रकार के होते हैं — पहला झूठ, दूसरा सफेद झूठ, और तीसरा आंकड़ों का झूठ। आंकड़ों से जुड़ा इन्द्रधनुषी झूठ यह है कि थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति शून्य से नीचे ऋणात्मक हो गई है, जबकि खाद्य वस्तुओं की कीमतों में पिछले वर्ष की तुलना में लगभग पचास प्रतिशत वृद्धि हो चुकी है।
आज अर्थव्यवस्था बदल चुकी है, परंतु थोक मूल्य सूचकांक की संरचना नहीं बदली। इसमें ऐसी वस्तुएँ हैं जो अपना महत्व खो चुकी हैं। महंगाई नापने का थोक मूल्य सूचकांक कोई पैमाना नहीं है और व्यावहारिक रूप से इसकी कोई उपयोगिता नहीं है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, जिसका आपसे संबंध है, फिर बढ़ रहा है। वैसे महंगाई पिछले 20–25 वर्षों से लगातार बढ़ रही है। वह कभी तेज गति से बढ़ती है तो कभी धीमी गति से।
मानसून की बेरुखी से देश के आधे जिलों में सूखा होने से खाद्य वस्तुओं के भाव और अभाव दोनों बढ़ते जा रहे हैं। अर्थविशेषज्ञों के अनुसार आने वाले समय में आर्थिक विकास सुस्त रहेगा और खाद्य महंगाई जीना दूभर कर देगी। रिजर्व बैंक की रिपोर्ट Inflation Expectations Survey of Households, दिसंबर 2015 के अनुसार भारतीय परिवारों का मानना है कि आने वाले वित्तीय वर्ष 2016–17 में 10.5 प्रतिशत की रफ्तार से महंगाई बढ़ेगी। सर्वे के अनुसार वित्तीय वर्ष की प्रथम तिमाही में यह वृद्धि प्रतिमाह 10.3 प्रतिशत रहेगी। सर्वे रिपोर्ट में 16 प्रमुख शहरों के 4828 परिवारों को सम्मिलित किया गया है। भारतीय परिवार रिजर्व बैंक के लक्ष्य से दोगुनी महंगाई की आशंका व्यक्त कर रहे हैं। आज हमारी अर्थव्यवस्था में जिस तरह की घटनाएँ हो रही हैं, उससे महंगाई पर नियंत्रण कठिन होता जा रहा है। अमेरिकी डॉलर के मुकाबले रुपये की सेहत बिगड़ी हुई है। वैश्विक संकट के चलते भारतीय निर्यात मुश्किल के दौर से गुजर रहा है। भारत का विदेशी ऋण विदेशी मुद्रा भंडार से ज्यादा हो गया है। औद्योगिक उत्पादन में आशानुकूल वृद्धि नहीं होने के चलते विदेशी संस्थागत निवेशक अपना पैसा घरेलू बाजार से निकाल रहे हैं।
इन सब कारणों से डॉलर की मांग बढ़ गई है, जिससे रुपये की हालत खस्ता होती जा रही है। पेट्रोल और डीजल को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया है और उस पर केंद्र सरकारें भारी करारोपण कर रही हैं, जिससे कीमतें कम नहीं हो रही हैं। सरकार भले ही इसे आर्थिक सुधार मानती है, पर महंगाई से जनता का हाल बेहाल है।
समूची अर्थव्यवस्था में इससे उत्पादन लागत में इजाफा हो रहा है। आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ने से कमजोर, निम्न और मध्य आय वर्ग की जेब पर सबसे अधिक बोझ पड़ता है। इससे जीवन स्तर की गुणवत्ता भी कम होती है और आर्थिक विकास की गति भी धीमी पड़ने लगती है।
रिजर्व बैंक बार-बार कहता है कि केंद्रीय बैंक का मुख्य काम कीमतों में स्थिरता बनाए रखना है, परंतु लचर मौद्रिक नीति के चलते महंगाई थमने का नाम नहीं ले रही है। मौद्रिक नीति कीमतों को कितना प्रभावित कर पाएगी यह कहना कठिन है। महंगाई को रोकने के लिए राजकोषीय घाटे में ज्यादा से ज्यादा कमी लाना होगा।
सरकार को वित्तीय वर्ष 2016–17 में राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 3.5 प्रतिशत रखने के लक्ष्य को हासिल करने में काफी दिक्कतों का सामना करना होगा। यद्यपि चालू वित्त वर्ष में राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3.9 प्रतिशत पर ही रखने का लक्ष्य है, लेकिन आने वाले वित्तीय वर्ष में सातवें वेतन आयोग और वन रैंक वन पेंशन के कारण लगभग 1 लाख करोड़ रुपये का बोझ बढ़ेगा।
यह कैसा अर्थशास्त्र है कि सरकार का राजकोषीय घाटा नियंत्रण में नहीं है और सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान में बढ़ोत्तरी की तैयारियाँ चल रही हैं। फिजूलखर्ची व सब्सिडी के बढ़ते बोझ से राजकोषीय घाटा बढ़ रहा है। सरकारी खर्चों में फिजूलखर्ची पर रोक लगाने की कोई झलक नहीं दिखाई देती। घाटा पूरा करने के लिए सरकार या तो ऋण लेगी या नये नोट छाप देगी। ऐसी दशा में स्फीतिकारक

दशाओं को रोका नहीं जा सकता।

महंगाई आम जनता को ठेंगा दिखाते हुए उफान पर पहुँचने की राह पर है। मांग और आपूर्ति का संतुलन बिगड़ गया है। इसमें सट्टेबाजी और जमाखोरी की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। आज जिस तरह से हमारी अर्थव्यवस्था में सट्टेबाजी बढ़ी है वह चौंकाने वाली है। कमोडिटी वायदा बाजार ने व्यापार जगत को पस्त कर दिया है। राज्य सरकारों की रुचि जमाखोरों के खिलाफ कार्यवाही करने में नहीं है।

नीतियों में ढांचागत कमियों को दूर करने के बजाय आयात का सहारा लिया जाता है। पिछले 10 वर्षों में खाद्य तेलों के क्षेत्र में हमारी आत्मनिर्भरता समाप्त हो चुकी है और हम आयात पर निर्भर हो गए हैं। आयात के जरिए आपूर्ति बढ़ाकर हालात पर काबू पाना कोई हल नहीं है।

महंगाई को रोकने के लिए कृषि उत्पादन, विपणन और आपूर्ति के मोर्चे पर बड़े बदलाव करने होंगे। खाद्य महंगाई हमारे कुप्रबंधन का नतीजा है। कीमतें बिचौलियों, मुनाफाखोरों और जमाखोरों के कारण भी खेतों से मंडी और वहाँ से उपभोक्ताओं तक पहुँचने के दौरान लगभग 1 लाख करोड़ रुपये का सालाना खाद्यान्न, फल और सब्जियाँ बर्बाद हो जाती हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि खाद्यान्न की बर्बादी रोकने हेतु प्रोसेसिंग प्लांट, कोल्ड स्टोरेज जैसी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं।

ऊँची ब्याज दर, परिवहन लागतों में वृद्धि, नीति निर्माण के मामले में निर्णय लेने में नाकामी व कारोबारी सुविधाओं में कमी के चलते गैर-खाद्य वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ रही हैं। महंगाई नियंत्रण के लिए सरकारी कदम कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं। भारत के आम आदमी के लिए महंगाई खतरनाक है क्योंकि बाजार में हर चीज़ व सेवाएँ पिछले साल की तुलना में बीस से पच्चीस प्रतिशत महँगी मिल रही हैं।

आर्थिक सुधारों का हम कितना ही गुणगान करें, पर महंगाई के चलते असली भारत का चेहरा बदरंग होता जा रहा है। गरीबी-जनित निराशा और विफलता कभी भी आक्रोश का स्वरूप ले सकती है। यदि ऐसा ही सब कुछ चलता रहा तो महंगाई हम सबको लील जाएगी।

उत्तर – आप एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं। देशभर में बड़ी संख्या में ऐसे अर्थशास्त्री मौजूद हैं, जो महंगाई के अस्तित्व को स्वीकार भी करते हैं तथा बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित भी करते हैं। मैं ऐसे लोगों को अर्थशास्त्री कहूँ या अनर्थशास्त्री, यह मैं नहीं सोच पा रहा।

मैं स्वयं न अर्थशास्त्र की चर्चा करता हूँ, न ही अनर्थशास्त्र की। मैं जो चर्चा कर रहा हूँ वह यथार्थशास्त्र पर आधारित है। यद्यपि इस तरह की चर्चा करने वाला मैं अकेला दिखता हूँ, किन्तु मैं अपने विचारों पर दृढ़ हूँ। मेरे विचार में महंगाई के अस्तित्व को प्रचारित करने के लिए पूरे देश में एक जाल फैला हुआ है, जो रिजर्व बैंक, मुद्रास्फीति, थोक मूल्य, खुदरा मूल्य सूचकांक, विकास दर, डॉलर का मूल्य, विदेशी मुद्रा भंडार, राजकोषीय घाटा, सकल घरेलू उत्पाद, वायदा बाजार आदि कई प्रकार के कृत्रिम ताने-बाने को मिलाकर बनता है।

ये सारे ताने-बाने एक-दूसरे के असत्य काल्पनिक आंकड़ों पर निर्भर रहते हैं और सब मिलकर महंगाई के असत्य को समाज में सत्य के समान प्रचारित करते हैं। ऐसे ताने-बाने से निकले महंगाई के असत्य विचार को हमारे अर्थशास्त्री सत्य के समान स्थापित करते रहते हैं।

मैंने चार-पाँच चीजों के यथार्थ का आकलन किया तो पाया कि महंगाई का सारा प्रचार पूरी तरह झूठा है। समाज में दो वर्ग हैं — (1) उत्पादक, (2) उपभोक्ता। कुल मिलाकर भारत में कृषि उत्पाद से जुड़े लोगों की संख्या एक-दो प्रतिशत से अधिक नहीं है। इस कार्य में लगे मजदूर कृषक की श्रेणी में न आकर उपभोक्ता ही माने जाएँगे। उपभोक्ता वर्ग का औसत जीवन स्तर सुधर रहा है और उत्पादक, किसान का जीवन स्तर कमजोर हो रहा है। यहाँ तक कि उपभोक्ता की भूख से मृत्यु की घटनाएँ लगातार घट रही हैं, तो उत्पादकों की आत्महत्या की घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। यदि महंगाई रही होती तो किसान मजबूत होते और उपभोक्ता कमजोर।

सन् 1947 में एक मजदूर को किसान एक दिन की मजदूरी में जितना अनाज देता था, उसकी अपेक्षा आज करीब दस गुना ज्यादा अनाज दे रहा है। मैं नहीं समझा कि अनाज सस्ता हुआ है कि महँगा।

शहरों में किसी भी प्रकार का उत्पादन नहीं होता। कृषि उत्पाद सहित अन्य उत्पाद गाँवों में ही पैदा होते हैं। गाँवों से निकलकर लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इससे पता चलता है कि उपभोक्ता वस्तुएँ सस्ती हुई हैं और शहरी जीवन अधिक सुविधाजनक हुआ है।

इसी तरह यह बात भी स्पष्ट है कि जिन वस्तुओं को महँगा बताया जा रहा है, वे वस्तुएँ आसानी से शहरों में पूरी की पूरी बिक जा रही हैं। इसका अर्थ है कि ये वस्तुएँ महँगी नहीं हैं, बल्कि क्रयशक्ति की तुलना में सस्ती हैं। पुराने जमाने में गर्मी के दिनों में मटर या टमाटर खाने का रिवाज नहीं था। आज यदि आप बेमौसम मटर और टमाटर खाकर महंगाई का रोना रोते हैं तो यह गलती महंगाई की नहीं है।

मैं देख रहा हूँ कि गाँवों में बासमती चावल पैदा करने वाला किसान उस बासमती चावल को उपभोक्ताओं के लिए बेच देता है और स्वयं मोटा चावल खाता है। बासमती चावल खाने वाला उपभोक्ता महंगाई-महंगाई चिल्लाकर आसमान सर पर उठा लेता है।

एक सामान्य-सा सिद्धांत है कि जब उपभोक्ता वस्तुएँ क्रयशक्ति की तुलना में सस्ती होती हैं तब बचत अधिक होती है, और जब बचत अधिक होती है तब सोना, चाँदी,

जमीन और आवागमन का विस्तार होता है। भारत में लगातार औसत से कई गुना अधिक सोने-चाँदी और जमीन के मूल्य बढ़े हैं। साथ ही स्वतंत्रता के बाद आबादी वृद्धि के अनुपात से 20–30 गुना अधिक आवागमन भी बढ़ा। इससे स्पष्ट है कि उपभोक्ताओं के जीवन स्तर में बहुत तेजी से सुधार हुआ है और उनकी बचत भी बढ़ी है। तीन चीजें एक साथ कभी हो ही नहीं सकतीं —

1. **महंगाई**
2. **महंगाई का जीवन पर बुरा प्रभाव**
3. **जीवन स्तर में लगातार सुधार**

मुझे आश्चर्य है कि हमारे आप जैसे अर्थशास्त्री तीनों बातों को एक साथ प्रमाणित कर रहे हैं, जो प्राकृतिक रूप से असंभव है। अर्थात तीनों में से कोई न कोई एक बात अवश्य गलत है। विकास स्पष्ट दिख रहा है, तो दो में से कौन-सी बात गलत है यह आपको तय करना है।

इन सबको देखते हुए भी महंगाई का प्रचार करने वालों की नीयत पर संदेह होता है। ये एक-दूसरे के असत्य को बल देने के लिए आंकड़ों का झूठ तैयार करते रहते हैं।

पहला प्रश्न उठता है कि महंगाई का मापदंड क्या है। वस्तु के मूल्य तीन प्रकार के होते हैं —

1. **वास्तविक**
2. **प्रचलित**
3. **प्रभाव डालने वाले**

वास्तविक मूल्य वह होता है जो सन् 1947 से लेकर आज तक की मुद्रास्फीति को घटाकर निकाला जाता है। सन् 1947 में रुपया चाँदी का था तथा एक डॉलर के बराबर था। आज भारत का रुपया यदि ताँबे और कागज का हो गया तो क्या वस्तु महँगी हो गई? सच्चाई यह है कि रुपये का मूल्य घटा, न कि वस्तु महँगी हुई।

आप चाँदी से तुलना छोड़ दें तो सरकारी आंकड़ों के अनुसार और यथार्थ में भी सन् 1947 से आज तक रुपये का मूल्य करीब ₹200 के बराबर है। इसका अर्थ हुआ कि जो वस्तु सन् 1947 में एक रुपये की मिलती थी और आज 200 रुपये की मिलती है, वह समतुल्य है। इस तरह सर्वे करने पर तो सिर्फ सोना, चाँदी, जमीन ही महँगे हुए हैं।

खाद्य तेल, दालें, डीजल, पेट्रोल, मांस लगभग सममूल्य हैं तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुएँ सस्ती या बहुत सस्ती हुई हैं, जिनमें सभी प्रकार के खाद्यान्न, कपड़ा, शक्कर, दूध तथा अन्य वस्तुएँ शामिल हैं।

महंगाई का दूसरा मापदंड है प्रचलित मूल्य जो आज दिखता है। यदि हम प्रचलित मूल्य को आधार बनायें तो हमें यह भी बताना पड़ेगा कि सन् 1947 से आज तक इस मूल्य में औसत 200 गुना वृद्धि हुई है। तो इस मूल्य का सामान्य जनजीवन पर कितने गुना बुरा प्रभाव पड़ा? यदि 200 गुना नहीं पड़ा तो कितना पड़ा — यह बताना आवश्यक है। यदि नहीं पड़ा तो क्यों नहीं पड़ा? इसी तरह एक तीसरा भी मूल्य है जो क्रयशक्ति की तुलना में निर्धारित होता है। एक गरीब आदमी एक समय में गरीबी के कारण किसी सब्जी को महँगी समझता है। वही व्यक्ति कुछ वर्षों बाद अपनी आर्थिक स्थिति ठीक होते ही उसी सब्जी को सस्ती समझने लगता है। तो प्रश्न उठता है कि महंगाई का इन तीन मापदंडों में से कौन-सा मापदंड सही है और किस मापदंड का औसत जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है।

आपने खाद्य वस्तुओं को छह महीने में डेढ़ गुना महँगा होना बताया — यह बात सफेद झूठ भी है और लगता है कि जानबूझकर यह झूठ फैलायी जा रही है। पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष सब प्रकार के खाद्यान्न सस्ते हुए हैं, बासमती चावल को छोड़कर।

पिछले दो-तीन महीने पहले दालों के मूल्य जितने बढ़े थे वे भी तेजी से घट रहे हैं। नई फसल आते-आते वे भी और घट जायेंगे। सब प्रकार की सब्जियाँ भी पिछले वर्ष की तुलना में सस्ती हुई हैं।

मैं समझ नहीं पा रहा कि लगभग अधिकांश वस्तुएँ सस्ती या बहुत सस्ती होने के बाद भी महंगाई के आंकड़े कम न होने के पीछे किस प्रकार का और किसका षड्यंत्र है। निश्चित ही या तो यह राजनीतिक षड्यंत्र है जो महंगाई शब्द को सत्ता परिवर्तन का हथियार मानते हैं अथवा सरकारी कर्मचारियों का षड्यंत्र है जो अपनी वेतन वृद्धि के लिए महंगाई शब्द का उपयोग करते हैं।

इस षड्यंत्र के परिणामस्वरूप तैयार किए गए आंकड़ों को लेकर हमारे अर्थशास्त्री और मीडिया कर्मी सारे देश में महंगाई के झूठ को प्रचारित कर देते हैं। आपने सोलह प्रमुख शहरों के 4828 परिवारों का सर्वेक्षण किया। अच्छा होता कि आप सोलह गाँवों के इतने ही परिवारों का सर्वेक्षण करते।

शहरों में क्रयशक्ति तेजी से बढ़ रही है और बढ़ी हुई क्रयशक्ति जीवन स्तर में सुधार ला रही है। यदि आप बासमती चावल खाना चाहते हैं तो आप उसके महँगा होने का रोना नहीं रो सकते। यदि मोटा चावल या मोटा अनाज गाँवों में महँगा हो — और वह भी क्रयशक्ति और मूल रुपया की तुलना में — तभी आप कोई निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

आपने डॉलर का जिक्र किया। स्वतंत्रता से आज तक सामान्यतः डॉलर का मूल्य ₹100 होना चाहिए था, जो अभी बढ़ते-बढ़ते ₹87 तक आया है। इसका अर्थ है कि डॉलर के मुकाबले में भारत का रुपया 75 वर्षों में करीब 20 प्रतिशत मजबूत हुआ है। यह अवश्य है कि इसे और अधिक मजबूत होना चाहिए था।

आपने एक ओर तो घाटे की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने का सुझाव दिया, दूसरी ओर टैक्स हटाने का भी

सुझाव दिया। मैं नहीं समझा कि ये दोनों एक साथ कैसे संभव हैं। आप एक अर्थशास्त्री हैं तो क्या आप जानते हैं कि भारत में घाटे की पूर्ति के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, सभी प्रकार के अनाज, खाद्य तेल, वनौपज, पेड़-पौधे, आंवला जैसी वस्तुओं पर भी भारी कर लगाए जाते हैं? मैं नहीं समझा कि डीजल, पेट्रोल की करवृद्धि की अपेक्षा गेहूँ, चावल, दाल, सरसों तेल जैसे ग्रामीण उत्पादन तथा ग्रामीण उपभोक्ता वस्तुओं के टैक्स समाप्ति की चर्चा देश के अर्थशास्त्री क्यों नहीं करते। कहीं इसके पीछे भी कोई षड्यंत्र तो नहीं है? गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी के उत्पादन और उपभोग की वस्तुओं पर भारी कर लगाकर डीजल-बिजली की बात उठाने वालों की नीयत पर संदेह होता है।

दालों और खाद्य तेलों का आयात एक बुरी आदत है। भारत में यदि दालों और खाद्य तेलों के मूल्यों को बढ़ने से नहीं रोका जाता तो भारत का किसान इन दोनों मामलों में देश को आत्मनिर्भर बना देता। हम चीनी, चावल निर्यात करें और दाल आयात करें — इसकी अपेक्षा तो यह अधिक अच्छा होता कि हम किसान को चीनी, धान की जगह दाल, तेल पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करते और उसका एक ही मार्ग है कि गन्ने, धान और दलहन, तिलहन के मूल्यों में एक युक्तियुक्त फ़र्क हो।

जमाखोरी से महंगाई बढ़ती है यह प्रचार भी गलत है। वस्तुस्थिति यह है कि फसल के समय व्यापारी उतना स्टॉक नहीं कर पाता और उसके कारण फसल के समय किसान को कम पैसा मिलता है। दूसरी ओर उसी वस्तु का स्टॉक कम होने के कारण फसल बीत जाने के बाद मूल्य तेजी से बढ़ता है। या तो सरकार स्टॉक करे या न कर पाने की स्थिति में दूसरों को करने दे। तब उत्पादन और उपभोग के मौसम में असमानता अधिक नहीं होगी, किन्तु सरकारों तथा आप जैसे अर्थशास्त्रियों के दुष्प्रचार के कारण यह समस्या निरंतर बनी रहती है, जो वास्तव में उत्पादकों के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है।

3. चिन्मय व्यास, देहरादून, उत्तरांचल, जुलाई 2014 का प्रश्न

विचार — महंगाई बढ़ने का एक कारण यह है कि सरकारें कई तरह के टैक्स लगाकर डीजल, पेट्रोल, बिजली को महंगा कर देती हैं जबकि हमारे आसपास के देशों में सब चीजें सस्ती हैं। बाहर के देशों में तो सस्ती हैं हीं। हमारे पड़ोसी चीन का उत्पादन बहुत सस्ता है। वहां की सरकार उद्योगों को बहुत सस्ता माल भी देती है तथा टैक्स भी नहीं लगता। आदर्श स्थिति यह होती कि सभी दल कुछ मुद्दों पर एक मत होकर समाधान खोजें। यदि और लोग न भी करें तो कम से कम ज्ञानतत्त्व तो ऐसा करे ही।

उत्तर — आप ऐसे अकेले व्यक्ति नहीं हैं जो भारत के डीजल, पेट्रोल, बिजली को दुनिया में सबसे ज्यादा महंगा बताते रहते हैं। अनेक लोग तो यह दावा भी करते हैं। डॉ. दानी दुर्ग (छत्तीसगढ़) के हैं। वे एस.एम.एस. द्वारा हमेशा ऐसा संदेश भेजते हैं। टीवी की बहस में भी विद्वान ऐसा बोलते हैं और मैं हमेशा चुप रह जाता हूं। मैंने अपनी व्यथा एक मित्र से बताई। उस मित्र के बताए अनुसार, दुनिया के तीन चौथाई देशों में डीजल-पेट्रोल भारत से बहुत महंगा है। डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इज़राइल, इटली, स्वीडन आदि तो ऐसे देश हैं जहां डीजल-पेट्रोल भारतीय मुद्रा के आधार पर सौ रुपये लीटर से भी ज्यादा रेट का है। अमेरिका में लगभग बराबर है या कुछ ही कम है। यदि हम बिजली की बात करें तो भारत में बिजली सारी दुनिया से सस्ती है। सिर्फ चीन ही है जो भारत के लगभग बराबर है। ब्रिटेन, अमेरिका आदि में भी भारत से लगभग पचास प्रतिशत महंगी है। ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, डेनमार्क आदि में तो भारत से चार-पांच गुना ज्यादा महंगी है बिजली। सारे आंकड़े अब उपलब्ध हैं। कोई पाठक यदि इससे भिन्न जानता हो तो वह स्पष्ट कर सकता है।

मुझे तो विश्वास हो गया है कि भारत में बड़े लोग, अनेक नेताओं, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों को कुछ सहायता करके ऐसा प्रचार करवाते हैं। मेरा आरोप है कि श्रम खरीदने वाले किसी षड्यंत्र के अंतर्गत ऐसे झूठ फैलाते हैं। अब असत्य को चुनौती है कि वह अपनी बात प्रमाणित करे।

आपने चीन का उदाहरण दिया किंतु यह नहीं बताया कि श्रम शोषण में चीन का रिकॉर्ड भारत से कई गुना ज्यादा खराब है। चीन में तो श्रमजीवियों को कैंपों में सिर्फ खाना देकर उत्पादन कराने की बात सुनी जाती है। अच्छा हो कि आप चीन का उदाहरण न दें, क्योंकि माल सस्ता रखने के लिए अमानवीय तरीके का समर्थन ठीक नहीं।

आपने ज्ञानतत्त्व को कुछ समस्याओं के समाधान में आगे जाने की सलाह दी है। यह बहुत गंभीर सलाह होने से व्यापक चर्चा आवश्यक है। मेरे विचार में कुल समस्याएं पांच प्रकार की होती हैं —

1.व्यक्ति निर्मित
2.सरकार निर्मित
3.प्राकृतिक
4.सामाजिक
5.श्रम निर्मित।

समस्याएं पांच ही होती हैं —
1.चोरी, डकैती, लूट
2.बलात्कार
3.मिलावट
4.जालसाजी, धोखाधड़ी
5.हिंसा, आतंक, बल प्रयोग।

ये सभी समस्याएं अपराध कही जाती हैं। भारत में इन समस्याओं का विस्तार राज्य की कम सक्रियता के कारण है। सरकार निर्मित समस्याएं छह प्रकार की हैं —

1.भ्रष्टाचार
2.चरित्र पतन
3.सांप्रदायिकता
4.जातीय कटुता
5.आर्थिक असमानता
6.श्रम शोषण।

भारत में इन समस्याओं का विस्तार राज्य की अधिक सक्रियता के कारण है।

प्राकृतिक समस्याएं, भू-मंडलीय समस्याएं सर्वविदित हैं। किंतु असत्य समस्याओं की लंबी सूची है जिन्हें हम भ्रम तथा अस्तित्वहीन मानते हैं। इनमें शामिल हैं — महंगाई, बेरोजगारी, महिला उत्पीड़न, दहेज, बाल श्रम आदि। ये समस्याएं लेश मात्र भी हैं ही नहीं।

सामाजिक समस्याओं में जुआ, शराब, वेश्यावृत्ति, लिंग अनुपात असंतुलन आदि शामिल हैं। सामाजिक समस्याएं दूर करना समाज का काम है, सरकार का नहीं। उस सरकार का तो बिल्कुल भी नहीं जो पहले प्रकार के पांच अपराधों को रोकने में सफल न हो रही हो।

आपने ज्ञानतत्त्व अर्थात मुझे मिल-जुलकर कुछ समस्याओं के समाधान में लगने की पहल करने की सलाह दी है। आप ही बताइए — जिन समस्याओं के समाधान में सरकार अथवा आप लोग लगे हैं और मेरी नजर में वे समस्याएं केवल भ्रम हैं, तो मैं ऐसे में आपको सच्चाई बताऊं या आपके साथ ही लग जाऊं?

आप लोग तो नेताओं के बहकावे में आकर बांस पर चढ़ने-उतरने में सक्रियता को ही 75 वर्षों से समाधान समझकर सक्रिय हैं, तो बताइए मैं क्या करूं?

मुझे तो स्पष्ट दिखता है कि छह प्रकार की समस्याओं का एक ही समाधान है — कि राज्य इनके समाधान से बाहर होकर पांच प्रकार के अपराधों की रोकथाम में अधिक सक्रिय हो जाए।

यदि राज्य इतना भी करने को तैयार नहीं या आप लोग इतना भी राज्य को समझा नहीं पा रहे हैं, तो मैं क्या करूं? मेरा प्रश्न सिर्फ आपसे न होकर सभी पाठकों से है। वे इस पर विचार करें।

4.श्री विजय सिंह बनकर, बल्लारपुर (महाराष्ट्र), मार्च 2014 का प्रश्न

प्रश्न —महंगाई के विचार से मैं आपसे सहमत हूं, लेकिन मजदूरी के भाव बढ़ने में और डीजल-पेट्रोल के रेट बढ़ने में क्या संबंध है, यह समझ नहीं पाया। मुझे लगता है कि इसका संबंध रोजगार के साधन बढ़ने से है। आंबेडकर जी के बारे में प्रकाशित आपके विचार से मैं असहमत हूं।

आंबेडकर जी ने कभी भी मुस्लिम धर्म में जाने की बात नहीं की या कभी चर्चा भी नहीं की। आंबेडकर जी ने धर्म परिवर्तन के समय सभी बातों को ध्यान रखा जो राष्ट्रहित में हैं। गांधी जी को समझने में आंबेडकर जी जरूर चूक गए। अब देश निश्चित ही बहुत विदारक स्थिति में आ गया है। समाजकर्मी भी एक नहीं हो सकते।

कांग्रेस ने गांधी जी के नाम का इतना दुरुपयोग किया है कि दुनिया में किसी भी महापुरुष के नाम का इतना दुरुपयोग नहीं हुआ होगा। कांग्रेस का नाम इसलिए गिनीज बुक में दर्ज कराने की मुहिम देशभर में छेड़ी जाए। यह देश के सामने सबसे बड़ा प्रारंभिक काम है कि सामान्य जन यह समझे कि गांधी और कांग्रेस का कोई संबंध नहीं।

जयपुर शिविर में राहुल गांधी अब भी दुहाई दे रहा है कि कांग्रेस गांधी की है। अब भी अपने स्वार्थ के लिए गांधी विचार को निचोड़ने का काम कांग्रेस कर रही है। देश का युवा गांधी को समझना चाहता है, नहीं तो "लगे रहो मुन्ना भाई" नहीं चली होती। सर्वोदय विचार व्यापकता के साथ युवाओं के सामने आएं।

राहुल गांधी में इतनी समझ नहीं है कि वे युवाओं के आदर्श के रूप में अपनी छवि बना सकें, नहीं तो उनके कदम लाल बहादुर शास्त्री के कदमताल से मिलते हुए दिखते।

उत्तर — आपने पेट्रोल से मानव श्रम को जोड़ने पर प्रश्न उठाया है। सच्चाई यह है कि कृत्रिम ऊर्जा मानव श्रम तथा पशु श्रम के विकल्प के रूप में उपयोग में आती है। कृत्रिम ऊर्जा मानव श्रम का शोषण करती है। समाज में दो समूह हैं — **1.श्रम खरीदने वाला, और**
2.श्रम बेचने वाला।

यदि श्रम खरीदने वाले को कृत्रिम ऊर्जा महंगी मिलेगी तो स्वाभाविक है कि वह कुछ प्रतिशत में मानव श्रम खरीदने को मजबूर होगा। स्वाभाविक है कि रोजगार के अवसर अपने आप बढ़ेंगे। इससे आवागमन महंगा होगा। स्वाभाविक है कि कुल आवागमन में दस-पंद्रह प्रतिशत की कमी हो। पशुओं का उपयोग भी बढ़ेगा।

कांग्रेस ने गांधी के नाम का दुरुपयोग किया, यह सच है, किंतु यह भी तो सच है कि कोई अन्य सच्चाई को सामने लाने वाला नहीं था। विपक्षी दल तो कांग्रेस की अपेक्षा ज्यादा गए-बीते दिखे, जो गांधी के विचारों का ही खुला विरोध करते रहे। भारतीय जनता पार्टी जिस तरह गांधी की जगह हिटलर को आदर्श मान रही है, वह भी कोई अच्छी बात नहीं। राहुल गांधी में राजनीतिक-प्रशासनिक समझ का अभाव है। ले-देकर मोदी ही दिखते हैं। देखिए, अगले चुनाव में क्या होता है।

5. श्री कृष्णचंद सहाय, स्वतंत्रता सेनानी, जयपुर, राजस्थान (फरवरी 2016 का प्रश्न)

प्रश्न: अंक 323 ज्ञानतत्व मिला। स्वास्थ्य के कारण 2–3 अक्टूबर 2015 को दिल्ली नहीं आ सका, अन्यथा लाभ ही होता। पूरा अंक गौर से पढ़ गया। कुछ विचार तो आपके इतने पक्के हैं जो शायद जीवन के अंतिम रूप तक रहेंगे — महंगाई, दहेज, महिलाओं, तवायफों आदि पर। मेरी शादी 1959 में 26 जनवरी को हुई थी। 100 रु.

मासिक सहायता मिलती थी। उसमें 20 रुपया दान करता था, 80 रु. में घी, दूध, मेवे, भरपूर सब्जी-दाल आदि खाता था। लेकिन अब मासिक 10,000 मिलता है और अकेला हूं, फिर भी महंगाई के कारण वह आनंद नहीं उठा पा रहा हूं जो 80 रु. में उठाता था।

बुद्धिजीवी विचार प्रस्तुत करता है, व्यावहारिक जीवन नहीं जानता है। इसलिए विनोबा ने कहा कि "मैं प्लानिंग कमीशन की बैठक में आ रहा हूं, पैदल चलकर।" तब पता चलेगा कि जनता की क्या परेशानी है।

फिर भी मेरे मन में आपके प्रति आदर और सम्मान भाव है। दो-तीन बातों की असहमति को लेकर आपको छोड़ दूं तो अपने ऊपर अन्याय करूंगा, क्योंकि 80 प्रतिशत विचारों को मैं सही मानता हूं, इसी कारण मैं आपसे जुड़ा हूं और कभी-कभी फोन भी करता हूं। कभी अवसर मिला तो आपके किसी शिविर में जरूर आऊंगा। स्वास्थ्य के कारण रामानुजगंज में नहीं बैठ सका, जो संकल्प जाहिर किया था।

उत्तर: 1959 में आपको 80 रु. वेतन मिलता था और आज आपको मासिक 10,000 रु. प्राप्त हो जाता है। उस समय आप सुखी थे और आज नहीं — यह बात सच होते हुए भी गलत है।

मैं एक लड़के को जानता हूं जो पहले प्राथमिक शाला में शिक्षक था और मामूली वेतन पर प्रसन्न था। आज वह विधायक बनते-बनते मंत्री भी बन गया, किन्तु वह आर्थिक दृष्टि से आज भी बहुत परेशान है। बताइए, मैं क्या कहूं।

आप एक सूची बनाइए कि उस समय 80 रु. में आप कुल मिलाकर क्या-क्या वस्तुएं किस मात्रा में लेते थे और खर्च करते थे। आज आपको वे सभी वस्तुएं उससे अधिक मात्रा में मिल पाती हैं या नहीं। आपको यह भी समझना होगा कि उस समय आप मोबाइल फोन पर क्या खर्च करते थे, यात्रा पर क्या खर्च करते थे, और दवाइयों पर क्या खर्च करते थे। यदि आज आपके खर्च के क्षेत्र बदल गए हैं, तो अंतर तो दिखेगा ही और घी-तेल की क्वालिटी या मात्रा खराब होगी ही। उस समय औसत उम्र 60 वर्ष थी और आज 80 है। इसके पीछे स्वास्थ्य संबंधी बढ़ा हुआ खर्च शामिल है। दूसरी ओर वातावरण प्रदूषित हो गया है, आवागमन बढ़ गया है, इच्छाएं बहुत बढ़ गई हैं, तो हम सब बातों पर विचार न करके महंगाई चिल्लाने का एक बहाना ढूंढ लें — यह ठीक नहीं। मैं चाहता हूं कि आप या कोई अन्य पाठक 1959 के 100 रु. में किए जा रहे खर्च का विवरण भेजे और आज उतने ही सामान का मूल्यांकन करें — कि वह 10,000 रुपये में कम होता है या अधिक। तब मैं इस विषय पर और विचार करूंगा।

उस समय आपको शुद्ध घी-तेल में आनंद आता था और आज यात्रा में अधिक आनंद आता है — तो इसके लिए महंगाई का बहाना क्यों?

6 एम. एस. सिंगला, अजमेर, राजस्थान, मई 2014 का प्रश्न

विचार –महंगाई आपके विचार मंथन का प्रमुख विषय रहा है। इसमें आपकी मूल सोच यह रही है कि महंगाई नहीं है, मुद्रास्फीति है। यह सोच सही है। यहां इन दोनों स्थितियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। देखिये आप उनसे कहां तक सहमत हो पाते हैं। जनता के लिए आम तौर पर मुद्रा स्फीति को समझ पाना मुश्किल होता है।

महंगाई वस्तु के व्यापार और उत्पाद से संबंधित है। उसकी उपलब्धता को प्रभावित कर दिया तो वह वस्तु उपभोक्ता को न मिल पाने से महंगी हो जाएगी। यानी जिस वस्तु के लिए 5 रुपये दिए जाते थे, उसके लिए 6-7 रुपये या अधिक दिए जायेंगे। किन्तु माल बाहर आते ही दाम गिर जाएंगे। यह बात अलग है कि दाम गिरने में समय लगता है। यही बात वस्तु के उत्पादन पर लागू होती है। किसी वस्तु का उत्पादन किसी कारण से गिर गया या उसकी अचानक मांग बढ़ गई तो उस वस्तु की कमी होने पर उसके भाव बढ़ेंगे। वस्तु की आपूर्ति होने पर मूल्य फिर सामान्य हो जाएगा। इस प्रकार महंगाई वस्तु की मांग और पूर्ति पर निर्भर करती है। यह अर्थशास्त्र का मूल नियम है। मुद्रा स्फीति में ऐसा नहीं होता या नहीं हो सकता। महंगाई विश्व युद्ध के दौरान बढ़ी थी, क्योंकि युद्ध के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता देने के कारण जनसाधारण की वस्तुओं का अपेक्षित उत्पादन नहीं हो पाता था, किन्तु युद्ध समाप्त होने पर कालांतर में महंगाई कम हो जाती थी। मुद्रा स्फीति पत्र मुद्रा की देन है। पत्र मुद्रा न हो तो मुद्रा स्फीति नहीं हो सकती। पत्र मुद्रा जारी करते समय पत्र मुद्रा के एवज में निर्धारित मात्रा में स्वर्ण भंडार रखना अपेक्षित, बल्कि आवश्यक होता है। भारत में ब्रिटिश शासन काल के समय तक इसका पालन हुआ था। साथ ही आंतरिक मूल्यवादी मुद्रा भी चलन में थी। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर धीरे-धीरे स्वर्ण भंडार कम होने लगा। इसका प्रभाव विशेष रूप में सन 1990 से दिखाई देने लगा। जब चंद्रशेखर के प्रधान मंत्रित्व में 40 टन सोना इंग्लैंड को गिरवी रखा गया था जो वापस नहीं आया। इसके विपरीत संसद में बताया गया था कि सोना छुड़ा लिया गया है। इसी के साथ नरसिंह राव के प्रधान मंत्री काल में उनके आदेश से करोड़ों रुपये की पत्र मुद्रा वैसे ही जारी कर दी गई थी। इस प्रकार मुद्रा स्फीति पत्र मुद्रा की देन है। वास्तविक मूल्य की मुद्रा चलन में होने पर मुद्रा का अवमूल्यन संभव नहीं होता। यही कारण रहा कि नरसिंह राव शासन के दौरान और उसके बाद की सरकारों ने स्वर्ण भंडार की बात छोड़ कर अमेरिकी डॉलर के भंडारण का राग अलापना शुरू कर दिया था और यह बात करके जनता को गुमराह किया गया था। गुमराह इसलिये कि वस्तुतः डॉलर स्वर्ण का स्थान नहीं ले सकता। दूसरे न

तो डॉलर के एवज में स्वर्ण भंडार रखने की व्यवस्था है और न उसका रूपये के साथ कोई लगाव है। आज भारतीय रिज़र्व बैंक की अधिकृत सूचना के अनुसार रिज़र्व बैंक में केवल 115 करोड़ रुपये मूल्य का सोना-चांदी और आभूषण हैं, यह एक छलावा है। इससे पूर्व जब मुद्रा स्फीति बहुत हद तक नियंत्रण में थी, रिज़र्व बैंक के पास 120 करोड़ रुपये मूल्य के सोने का भंडार सन् 1964 के सोने के भाव से था, जो लगभग 64 रुपये तोला था। इस प्रकार ध्रुव सत्य यही है कि देश में महंगाई नहीं है। यह सब सरकार की ओर से रचा गया मुद्रा स्फीति का खेल है। कोई आश्चर्य नहीं कि यह मुद्रा स्फीति इंडिया को इंडोनेशिया की मुद्रा के बराबर ला खड़ा कर दे। भारत का रूपया आज भी इंडोनेशिया के रूपये से लगभग 200 गुना अधिक मूल्यवान है। भारत के स्वतंत्र होने तक देश में कागज के नोटों के साथ चांदी के रुपये, अठन्नी और चवन्नी के सिक्के चलते थे। तब के 1947 के चांदी के एक रुपये का बाजार भाव आज लगभग 900 रुपये है। इस प्रकार तब से मुद्रा स्फीति 900 गुना मानी ही जाएगी। परन्तु मुद्रा स्फीति का प्रभाव मौलिक या प्राकृतिक उत्पादन और वैज्ञानिक उत्पादन पर अलग-अलग पड़ा है। उस समय की कुछ चीज़ों या वस्तुओं के भावों की आज के भावों से तुलना करके मुद्रा स्फीति की बात समझी जा सकती है, क्योंकि भिन्न वस्तुओं के दरो का अनुपात भी एक जैसा नहीं रहा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:

(दर – एक रूपया प्रति ... सेर)

गेहूँ 1 सेर, चना 16 सेर, ग्वार 15 सेर (अब यह कैश क्रॉप हो गया है और 200 रुपये प्रति किलो बिक रहा है)। घी 1 रुपये सेर (तब डालडा का जन्म नहीं हुआ था), दूध चार-छह आने सेर, सब्जियां औसतन चार आने सेर, ये भाव लगभग हैं। इन वस्तुओं के आज के भाव से तुलना करके मुद्रा स्फीति का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके बावजूद जैसा कि ऊपर बताया गया है, सन् 1964 में सोने का भाव 64 रुपये तोला था, तब आज सोना 35,000/ तोले के भाव से मुद्रा स्फीति लगभग 550 हो गई है। देखना यह है कि क्या श्रम मूल्य इसी अनुपात में बढ़ा है या नहीं। क्या आम जनता के लिए इसे महंगाई कहा जाना स्वाभाविक है? एक बात और – तब आज के दामों को देखते हुए यांत्रिक वस्तुएँ महंगी थीं, क्योंकि इस क्षेत्र में पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था। कुल मिलाकर महंगाई आम आदमी की जरूरत की वस्तुओं के लिए अधिक पैसा देना ही है।

यहां यह विचार आना स्वाभाविक है कि जो विश्लेषण यहां एक साधारण नागरिक दे रहा है, वह तथाकथित देश के बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों के ध्यान में क्यों नहीं है। इसके समाधान में इतना ही कहना काफी होगा कि उन अर्थशास्त्रियों के ध्यान से बातें बाहर नहीं हैं। किन्तु लोकतंत्र में ऐसे अर्थशास्त्रियों का जनता को लूटने का यही श्रेष्ठ साधन या तरीका बनता है। भारत ही नहीं अन्य लोकतांत्रिक देशों का भी लेकर यही हाल है।

स्वाभाविक है कि लोकतंत्र में जब कोई साधारण व्यक्ति VIP बनेगा या वहां तक पहुंचने के लिए बड़ी धनराशि खर्च करेगा और एड़ी-चोटी का जोर लगाएगा तो क्या वह उसका प्रतिफल उस में से नहीं चाहेगा? इस प्रकार निष्कर्ष यही है कि लोकतंत्र में यह लूट उसका गुणधर्म ही कहा जायेगा। सरकार को मुद्रा स्फीति से लाभ का एक उदाहरण देख लें – तब आयकर की सीमा 3600/- सालाना थी। 3600 को 550 से गुणा करने पर 19,80,000/- बनती है किन्तु जो दो लाख भी नहीं है। जो देश मुद्रा स्फीति की चपेट में आ जाते हैं, वे उन देशों के हाथ लुटते हैं जहां की मुद्रा कठोर होती है। कारण यह है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार का भुगतान तो पत्र मुद्रा के माध्यम से नहीं होता। वह स्वर्ण के माध्यम से ही होता है। इसका उदाहरण है चीन। अमेरिका ने चीन पर उसकी मुद्रा युआन की दर घटाने पर जोर डाला किन्तु चीन नहीं माना। मैं समझता हूँ कि अपनी बात ठीक से प्रस्तुत कर पाया हूँ।

उत्तर – मेरे विचार से मांग और पूर्ति के असंतुलन से अस्थायी रूप से कोई वस्तु महंगी या सस्ती होती है, जिसे वस्तु विशेष का महंगा या सस्ता होना कहा जा सकता है। किन्तु यदि सब चीजें महंगी हो जाएं, तब उसे महंगाई कहेंगे। कुछ वस्तुओं के महंगा होने और कुछ के सस्ता होने को महंगाई नहीं कहा जा सकता। भारत में महंगाई शब्द प्रचलित है, जिसका अर्थ है सब वस्तुओं का महंगा होना, न कि एक वस्तु का।

किसी वस्तु का महंगा या सस्ता होने का आंकलन 3 प्रकार के मूल्यों से किया जा सकता है:

1.प्रचलित रुपये के आधार पर

2.सन् 1947 के रुपये के आधार पर

3.क्रय शक्ति के आधार पर

यदि मुद्रा स्फीति बढ़ती है और साथ में क्रय शक्ति भी बढ़ती है, तो उसे महंगाई नहीं कह सकते। स्वतंत्रता के पूर्व एक ओर उत्पादन घटा था, दूसरी ओर युद्ध के लिए बड़ी मात्रा में नोट छाप लिए गए थे। आम लोगों की क्रय शक्ति उस तरह नहीं बढ़ी, जिस तरह वस्तुओं के मूल्य। इसलिए उस कालखंड में महंगाई का बढ़ना कहा जा सकता है। उस कालखंड में मुद्रा स्फीति भी बढ़ी और महंगाई भी।

स्वतंत्रता के बाद के लगभग 76 वर्षों में रुपये का भौतिक मूल्य लगभग 200 गुना गिरा है। अर्थात सरकारी आंकड़ों के अनुसार औसत वस्तुओं के मूल्य सन् 1947 के रुपये के आधार पर आज के 200 रुपये के बराबर हैं। तीन वर्षों में यह 250 रुपये के करीब पहुंच जाएगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि उस समय एक रुपये में एक किलो कोई वस्तु प्राप्त होती थी और आज 200 रुपये में प्राप्त होती

है, तो वह वस्तु न महंगी हुई है और न सस्ती। यदि हम क्रय शक्ति की तुलना करें तो कुल आबादी की एक तिहाई श्रमजीवियों की क्रय शक्ति लगभग 300 गुना बढ़ी है, अर्थात दो गुनी हुई है। एक तिहाई बुद्धिजीवियों की क्रय शक्ति लगभग 8 गुना बढ़ी है। एक तिहाई धनप्रधान लोगों की क्रय शक्ति लगभग पांच हजार गुना बढ़ गई है, अर्थात चौसठ गुना बढ़ी।

इस क्रय शक्ति का प्रभाव यह पड़ा कि श्रमजीवियों और गरीबों के उपयोग में आने वाली वस्तुओं के आधार पर उनके जीवन स्तर में दुगुने का सुधार हुआ। जिसका अर्थ हुआ कि उनके उपयोग में आने वाली वस्तुएँ 300 गुना भी बढ़ जाएं, तो उन पर महंगाई का प्रभाव नहीं पड़ता। हुआ ठीक इसका उल्टा कि उनके उपयोग में आने वाली वस्तुएँ 80 गुना ही बढ़ पाईं और इसलिए उनके जीवन स्तर में 4-5 गुना तक अंतर दिख रहा है।

एक मजदूर को सन् 1947 में एक दिन के श्रम के बदले औसत जितना अनाज मिलता था, वह आज बढ़कर एक दिन के श्रम के बदले उससे 10 गुना अधिक मिल रहा है। इसका सीधा अर्थ हुआ कि श्रम का मूल्य बढ़ा है, अनाज, कपड़ा आदि का घटा है और जीवन स्तर 4-5 गुना बढ़ा है। उस समय जो लोग हमारे क्षेत्र में कोदो, कुटकी, महुआ, गोलनी, सांवा तक खाते थे, वही लोग बाद में सुधर कर मक्का और जौ खाने लग गए और वही लोग अब गेहूं, चावल खाने लग गए। फिर भी यदि कोई महंगाई का बढ़ना कहता है तो उसे स्वार्थांध ही कहा जा सकता है। क्योंकि वह जानबूझकर स्पष्ट देखते हुए भी महंगाई-महंगाई चिल्ला कर भ्रम फैला रहा है। उस समय के बुद्धिजीवियों का वेतन अथवा अन्य आय के साधन कई सौ गुना तक बढ़ गए हैं। उस समय के बुद्धिजीवी यदि साइकिल का उपयोग करते थे तो आज मोटर साइकिल, टीवी आदि का बेधड़क उपयोग कर रहे हैं। बुद्धिजीवी उस समय जितनी कृत्रिम ऊर्जा का उपयोग करते थे, आज वे अपने दैनिक जीवन में कृत्रिम ऊर्जा का कई गुना अधिक प्रयोग कर रहे हैं। इसका अर्थ हुआ यदि कोई मिडियम क्लास का व्यक्ति महंगाई से पीड़ित होने की बात करता है, तो वास्तव में वह गाली सुनने से कम अपराध नहीं करता। 33 प्रतिशत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग तो इतना अधिक उपर चला गया कि उसने अपनी बढ़ी हुई 200 गुनी क्रय शक्ति के आधार पर कृत्रिम ऊर्जा का खुला दुरूपयोग किया। उसका ही परिणाम हुआ कि भारत में स्वतंत्रता के बाद कुल आबादी 3-4 गुनी ही बढ़ी है, किन्तु आवागमन सैकड़ों गुना बढ़ गया। इस उच्च वर्ग की क्रय शक्ति बढ़ने का ही एक परिणाम यह हुआ कि सोना-चांदी और जमीन के मूल्य हजारों गुना ऊपर चले गए। आज यदि वस्तुओं की महंगाई का आंकलन करें तो सोना-चांदी और जमीन मांग बढ़ने और उत्पादन स्थिर रहने के आधार पर बहुत महंगे हुए हैं। दूसरी ओर डीजल-पेट्रोल मांग बढ़ने के बाद भी विदेशों से आयात बढ़ाकर तथा बड़ी मात्रा में विदेशों से कर्ज लेकर मूल्य वृद्धि नहीं होने दी गई। अन्य सभी वस्तुओं का आंतरिक उत्पादन बढ़ा और इसलिये सारी वस्तुएँ सस्ती हुई हैं। यहाँ तक कि कुछ इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ जैसे घड़ी, फाउंटेन पेन, रेडियो ट्रांजिस्टर, मोबाइल फोन आदि तो मिट्टी के भाव हो गए हैं। अब आप ही बताइए कि ऐसी स्थिति में कौन सी ऐसी वस्तु महंगी हो गई है जिसका दुष्प्रभाव किसी भी वर्ग पर पड़ा है।

एक प्रश्न और बार-बार उठता है कि भारत के आम लोग महंगाई को महसूस क्यों करते हैं? एक टीवी चैनल में महंगाई की चर्चा हुई तो महंगाई के समर्थक, अगल-बगल में बैठे दोनों विद्वानों के पास कोई उत्तर नहीं था, न ही श्रोताओं के पास। सब निरुत्तर थे और तब उन्होंने एक प्रश्न श्रोताओं के समझ उछाला कि जितने लोग महंगाई का होना स्वीकार करते हैं, वे हाथ उठाएँ। मैं अकेला था और महंगाई के समर्थन में सारे हाथ उठ गए। मैं निरुत्तर था। आखिर क्या कारण है इसका?

मेरे विचार से, किसी व्यक्ति को किसी वेतन पर 1 जनवरी को जितना सामान मिलता है और 2 जनवरी को उसका वेतन 10 प्रतिशत बढ़ जाता है तो उसको 10 प्रतिशत अधिक सामान मिलने लगता है। उसके मन में अधिक सामान मिलने की कल्पना घर कर जाती है। छह महीने के बाद या एक वर्ष बाद जब उसका वेतन बढ़ता है, तब तक उसे मिलने वाली सामान की मात्रा घटकर उस स्थिति तक पहुंच जाती है, जहाँ उसे 2 जनवरी के पूर्व जितना सामान मिलता था। मिलने वाले सामान की प्रतिदिन घटती हुई मात्रा उसे महंगाई का आभास कराती है और अन्य लोग उसकी आभास की पुष्टि कर देते हैं।

मेरे विचार से महंगाई का एक बहुत ही सीधा और सरल समाधान है कि 100 रूपये के नोट को एक नया रूपया बोलना और लिखना शुरू कर दिया जाए, तो महंगाई अपने आप घट जाएगी। उसके लिए कुछ नहीं करना पड़ेगा क्योंकि महंगाई भावनात्मक समस्या है, वास्तविकता से दूर है, और सन 1947 की तुलना में आज के रूपये का सौ गुना मूल्य परिवर्तन महंगाई को समाप्त कर देगा। यहाँ तक कि डालर भी 80 नए पैसे में मिलने लगेगा। करोड़पतियों की संख्या अपने आप घट जाएगी। लेन-देन में लिखा-पढ़ी भी कुछ कम हो जाएगी। बड़े-बड़े नोटों का प्रचलन रोकने की रामदेव बाबा की बेसिर-पैर की मांग भी अर्थहीन हो जाएगी। सच्चाई यह है कि महंगाई खत्म हो जाएगी। किसी प्रकार का अलग कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। फिर से एक पैसा और पचास पैसा जिन्दा हो जाएगा और कम से कम एक अस्तित्वहीन समस्या का प्रभावहीन समाधान हो जाएगा। आपने घी, गेहूँ, चावल, दूध आदि के 1947 के मूल्यों का आंकड़ा दिया है। वह मेरी जानकारी के अनुसार गलत है। उस समय घी का भाव एक रूपये की

अपेक्षा कई गुना अधिक था और गेहूँ का तीन गुना कम, चना का भाव भी एक रूपये का 16 सेर नहीं था। आप इन आंकड़ों का विवरण भेजेंगे तो स्पष्ट होगा क्योंकि गलत आंकड़े भ्रम पैदा करते हैं।

7 मनोज कुमार द्विवेदी, ऋषिकेश, फरवरी 2016 का प्रश्न

आपका ज्ञान तत्व पाक्षिक अंक 01 से 15 सितंबर, 2015 प्राप्त हुआ। उसमें आपके द्वारा दिया गया उत्तर (विचार) पढ़ा। महंगाई पर जो आपके विचार होते हैं वे मुझे समझ में नहीं आते क्योंकि ये विस्तार से नहीं होते या हमारी समझ संकुचित है। जो भी हो आप हमारे मार्गदर्शक हैं। कृपया हमारी शंकाओं के निम्न आधार को मानते हुए विचार देकर समाधान करें। हमारी समझ से महंगाई निर्धारण में सिर्फ कुछ हिस्सों के मजदूरी और कुछ वस्तुओं की महंगाई बढ़ने और घटने से नहीं लगाया जा सकता। महंगाई निर्धारण पर कुछ निम्न आधारों पर विचार करना आवश्यक होता है-

1.मांग तथा पूर्ति।
2.रोजगार का स्तर।
3.वस्तुओं की कीमत। (सामान्य स्थिति)
4.वस्तुओं की उपलब्धता।
5.वस्तुओं का थोक तथा फुटकर मूल्य।
6.बाजार की दिशा।

भारत की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था है जिसमें कृषि अर्थव्यवस्थाअधिकांशतःमौसम पर आधारित होती है। कृषि क्षेत्र में जो श्रमिक होते हैं वे अधिकांशतःमौसमी और बंधुआ मजदूरी पर आधारित होते हैं। इन सभी मजदूरों के अतिरिक्त भी उनके परिवार के कुछ सदस्य होते हैं जिन्हें कोई काम नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में इन अतिरिक्त व्यक्तियों के लिए महंगाई की व्याख्या क्या होनी चाहिए? किसी भी नागरिक के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की जरूरत होती है। पहले रोटी की बात—रोटी प्राप्त करने के लिए आवश्यक सामग्री—गेहूँ और उससे निर्मित आटा, ईंधन,नमक,दाल। एक परिवार में कितने सदस्यों को आधार मानकर खाद्य-सामग्री उपलब्धता का आंकलन करके महंगाई का निर्धारण करेंगे (ग्रामीण तथा सुदूर क्षेत्रीय)? सावरकरवादी गुट भी सक्रिय हो गए, उन्होंने इसे हिंसक प्रवृत्तियों के समर्थन में एक नया औचित्य बनाने की कोशिश की। मुख्य न्यायाधीश को भी इस घटना से प्रतिष्ठा मिली। उन्होंने जिस शांत और संयमित ढंग से प्रतिक्रिया दी, वह उल्लेखनीय रही। उन्होंने अपराधी को क्षमा कर एक उच्च नैतिक उदाहरण प्रस्तुत किया और यह दिखाया कि न्याय केवल कानून का नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना का भी विषय है। लेकिन इन तमाम लाभों के बीच सबसे अधिक हानि हमें हुई है—क्योंकि जिन प्रवृत्तियों के खिलाफ हम संघर्ष कर रहे थे, वही प्रवृत्तियां इस घटना से फिर मजबूत हुई हैं। इसीलिए ऐसी घटनाओं की निंदा उसी समय होनी चाहिए जब 'सनातन' के नाम पर सावरकरवादी या कोई भी उग्रवादी तत्व समाज में अपनी जड़ें मजबूत करने लगें। इतिहास गवाह है कि जो राष्ट्र उग्रवादियों के सामने झुक जाते हैं, उन्हें भविष्य में भारी नुकसान उठाना पड़ता है—जैसा पाकिस्तान, बांग्लादेश और हम स्वयं गांधी हत्या के बाद झेल चुके हैं। अब भी समय है कि हम सतर्क हों और खुलकर उन सभी की आलोचना करें जिन्होंने न्यायपालिका के निर्णयों पर अनावश्यक आक्षेप लगाए। न्याय और विवेक का सम्मान ही समाज को सही दिशा दे सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए तीन क्षेत्रों के अंतर्गत भारत सरकार कार्यक्रम बनाकर योजना चलाती है, जिसके आधार पर विकास का मूल्यांकन किया जाता है। प्रश्न बहुत हैं पर एक-एक बिंदुओं पर ही आपके उत्तर और विचार के माध्यम से समाधान पाने की इच्छा रखता हूँ।

उत्तर—यह सही है कि अनेक विषयों पर मैं विस्तार से उत्तर नहीं देता। क्योंकि अनेक पाठक ऐसे हैं जो 30-40 वर्षों से ज्ञान तत्व पढ़ रहे हैं तथा अनेक उनमें से बदलते रहते हैं, नए जुड़ते रहते हैं। मैंने महंगाई पर पूर्व में कई बार विस्तारपूर्वक लिखा। यदि बिना किसी पाठक के प्रश्न के मैं फिर से विस्तारपूर्वक लिखूँ तो पुराने पाठकों को महसूस होता है कि मुनि जी एक ही बात को बार-बार दुहरा रहे हैं। मेरे पंद्रह वर्षों के पुराने सभी अंक काष इंडिया डांट काम में भी उपलब्ध हैं। फिर भी आपने विस्तार से प्रश्न किए हैं।

यह सच है कि भारत का प्रत्येक नागरिक महंगाई के अस्तित्व और उसके प्रभाव को स्वीकार करता है। मैं अकेला व्यक्ति हूँ जो महंगाई के अस्तित्व को ही भ्रम मानता हूँ। मैं जब किसी से तर्कपूर्वक चर्चा करता हूँ तो सामने वाला मेरी बात से सहमत हो जाता है। किन्तु एक-दो दिन के बाद ही फिर से वह महंगाई का समर्थन शुरू कर देता है। क्योंकि प्रचार माध्यमों द्वारा महंगाई व्यक्ति के संस्कार में शामिल हो चुकी है और संस्कार विशेष रूप से भारत में विचारों पर हावी रहता है।

भारत में महंगाई 1939 से लेकर 1947 तक थी। महंगाई उसे कहते हैं जब औसत व्यक्ति की क्रय शक्ति की तुलना में उसकी उपभोक्ता या उपयोग की वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाए और बढ़ता चला जाए। सन 1939 से 1947 तक वस्तुओं के मूल्य में औसत बारह गुना की वृद्धि हुई थी जबकि क्रय शक्ति में बहुत मामूली वृद्धि थी। 1947 के बाद भारत में निम्न वर्ग की क्रय शक्ति उपभोक्ता वस्तुओं के औसत मूल्य से करीब दो गुना बढ़ी है, मध्यम वर्ग की क्रय शक्ति आठ गुनी और उच्च वर्ग की चौसठ गुनी बढ़ी है। एक भी समूह ऐसा नहीं है जिसकी क्रय शक्ति उपभोक्ता वस्तुओं की अपेक्षा कम हुई हो, भले ही वह भीख मांगने वाला ही क्यों न हो। महंगाई अस्तित्वहीन शब्द है और महंगी का अस्तित्व है। महंगाई अनेक वस्तुओं के औसत मूल्य वृद्धि का नाम है जबकि महंगी कोई वस्तु होती है, वस्तु समूह नहीं। इसी तरह मुद्रा स्फीति और महंगाई भी अलग-अलग होते हैं।

मुद्रा स्फीति नगद रुपये के मूल्य ह्रास को कहते हैं। मुद्रास्फीति का सामान्य जनजीवन पर कोई अच्छा या बुरा प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वह तो एक प्रकार का सरकार का अघोषित कर है। किसी उपभोक्ता वस्तु की मांग और पूर्ति के बीच जब अंतर बढ़ता है तब वह वस्तु अन्य वस्तुओं का साथ छोड़कर अकेली महंगी हो जाती है। किन्तु यदि सभी वस्तुओं की मांग बढ़ने लगे और पूर्ति उस मूल्य पर न हो तो वह महंगाई न होकर औसत क्रय शक्ति के बढ़ने का प्रभाव माना जाता है।

यदि हम भारत में मुद्रा स्फीति और क्रय शक्ति का आकलन करें तो भारत में सोना, चांदी, जमीन बहुत अधिक महंगे हुए हैं। कृत्रिम ऊर्जा, खाद्य तेल तथा दालें औसत बराबर हैं। सभी प्रकार के अनाज, कपड़ा आदि उपभोक्ता वस्तुएँ सस्ती हुई हैं तथा इलेक्ट्रॉनिक्स के सामान मिट्टी के मोल हो गए हैं। क्या वस्तु सस्ती हुई है और क्या महंगी, इसके आकलन का एक पैमाना है कि स्वतंत्रता के बाद यदि किसी वस्तु का मूल्य 2015 में 85 रुपये के बराबर है तो वह वस्तु समान स्तर पर है। यदि उससे अधिक बढ़ा तो महंगी और कम बढ़ा तो सस्ती। इसके साथ ही 33 प्रतिशत निचली आबादी की क्रय शक्ति 2 गुनी हुई है और अनाज, कपड़ा सस्ता। यही कारण है कि निचली आबादी का भी जीवन स्तर कुल मिलाकर 3 से 4 गुना तक ऊपर हुआ है।

रोजगार या बेरोजगारी की सटीक पूर्वक परिभाषा विकृत कर दी गई। भारत में 368 चपरासियों के पदों पर साढ़े तीन लाख लोगों ने आवेदन किया क्योंकि बेरोजगारी की परिभाषा बदल दी गई। यह साढ़े तीन लाख लोग बेरोजगार नहीं थे बल्कि उचित रोजगार की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने का प्रयत्न करने वाले लोग हैं। वर्तमान में भारत सरकार ने न्यूनतम श्रम मूल्य 160 रुपये घोषित कर रखा है। इस मूल्य पर भी सरकार सबको वर्ष भर रोजगार देने की गारंटी नहीं दे पा रही है। 160 रुपये में जिस व्यक्ति को योग्यतानुसार काम न मिले तो वही बेरोजगार माना जा सकता है। लेकिन बेरोजगारी की परिभाषा बदलकर योग्यतानुसार काम और काम के अनुसार वेतन कर दिया गया, जो गलत परिभाषा है। वस्तुओं की कीमत को रुपये के आधार पर नहीं आंका जा सकता क्योंकि रुपया कभी चांदी का रहता है, तो कभी रंगे का हो जाता है और कभी कागज का। रुपया ने अपनी क्रय शक्ति चांदी से बदलकर सरकार के मान्यता के साथ जोड़ ली तो वस्तुओं के मूल्य की चांदी से तुलना नहीं की जा सकती। कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं या विदेशी मांग के कारण कुछ वस्तुओं की उपलब्धता पर असर पड़ता है। उसके आधार पर ही कुछ वस्तुएं कभी महंगी हो जाती हैं और कभी सस्ती। यह उतार-चढ़ाव हमेशा चलता रहता है। अनेक वस्तुएं एक ही समय में महंगी हो जाती हैं तो अनेक वस्तुएं उसी कालखंड में सस्ती भी हो जाती हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि सभी वस्तुएं एक साथ महंगी हो जाएँ और यदि कभी ऐसा हुआ तो वह मुद्रा स्फीति होती है, उसकी अपेक्षा अधिक मात्रा में औसत क्रय शक्ति बढ़ जाती है। वस्तुओं के थोक और खुदरा मूल्य में कभी कोई विशेष अंतर नहीं होता। यदि अंतर चालीस वर्ष पहले 10 प्रतिशत का था तो आज भी 10 प्रतिशत का ही है। कभी-कभी अल्पकाल के लिए किसी विशेष परिस्थिति में यह अंतर घट-बढ़ जाता है लेकिन औसत अंतर लगभग समान रहता है। यह आवश्यक है कि जब मुद्रा स्फीति तेजी से घटने लगती है तो खुदरा और थोक मूल्य का अंतर बढ़ जाता है। जब मुद्रा स्फीति बढ़ने लगती है तो यह अंतर घट जाता है। वर्तमान में मुद्रा स्फीति तेजी से घटने के कारण यह अंतर बढ़ गया है। यह कहना पूरी तरह गलत है कि किसी वस्तु का लंबे समय तक स्टॉक करके बाजार को प्रभावित किया जाता है। पुराने जमाने में जब आवागमन अथवा संचार साधन कम थे तो स्थानीय उत्पादन का आकलन करके व्यवसायी स्टॉक करते थे और कभी-कभी उसका लाभ या हानि भी उठाते थे। वर्तमान समय में यह संभव नहीं है और दुष्प्रचार मात्र है। किसी एक वस्तु का किसी विशेष परिस्थिति में बाजार की दिशा को अल्पकाल के लिए अपने हित में मोड़ा जा सकता है किन्तु सभी वस्तुओं का लंबे समय के लिए ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि ऐसा करने वाले यदि कभी बहुत लाभ उठाते हैं तो कभी बर्बाद भी हो जाते हैं। जिन कृषक मजदूरों को कृषि कार्य के अतिरिक्त काम नहीं मिलता उन्हें काम देने के लिए सरकार ने नरेगा योजना शुरू की है। वैसे भी आपको एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जो काम करना चाहे और उसे चार किलो अनाज प्रतिदिन पर कोई काम न मिले। इसका अर्थ हुआ कि वर्ष में पंद्रह सौ किलो अनाज का काम तो प्रत्येक व्यक्ति के पास है। और यदि उसके पास तीन आश्रित हैं तो वर्ष में एक सदस्य को 500 किलो अनाज तो उपलब्ध है ही। भले ही वह कुछ दिन काम करें और कुछ दिन आराम करें। मैं नहीं समझता कि ऐसे व्यक्ति को बेरोजगार माना जाए या नहीं। क्योंकि बेरोजगारी की परिभाषा तो बनानी ही पड़ेगी।

मैं समझता हूँ कि यदि आप आदर्श परिभाषा पूछें तो मेरे विचार में एक परिवार जिसके पांच सदस्य हों, उसे 700 रुपये प्रतिदिन अर्थात इक्कीस हजार रुपये मासिक आय के रोजगार की गारंटी होनी चाहिए और यदि उससे कम मिल पाता है तो सरकार को उसकी पूर्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। यही कारण है कि मैंने मांग की है कि कृत्रिम ऊर्जा का मूल्य ढाई गुना करके प्रत्येक परिवार को 10,000 रुपये जीवन भत्ता देने की गारंटी दी जानी चाहिए। मैं जानता हूँ कि सभी मध्यम, उच्च तथा बौद्धिक शिक्षित जगत के लोग इस मार्ग का विरोध करेंगे। क्योंकि इस मांग से श्रम खरीदने वालों को सस्ता श्रम नहीं मिलेगा और श्रम खरीदने तथा बेचने वालों के बीच दूरी बहुत घट जाएगी।

अर्थात् श्रम खरीदने वालों को या तो महंगा श्रम खरीदना होगा या स्वयं आंशिक श्रम करना होगा, जो वे नहीं चाहते। श्रम को गुलाम बनाकर रखने वाले और सस्ता श्रम खरीदना अपना अधिकार समझने वाले महंगाई का हल्ला करने वाले लोगों को गुमराह करते हैं।

पत्रोत्तर

1 श्री शिव दत्त जी बाघा, जिला बांदा उत्तर प्रदेश सितंबर 2025 का पत्र

प्रश्न 1 ज्ञान तत्व अंक 466 में, अपने कुंभ मेले में पुलिस द्वारा एक पत्रकार की पिटाई का खुला समर्थन किया, जो ठीक नहीं था। पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तंभ होती है, इसलिए पत्रकारिता को कुछ विशेष अधिकार भी दिए गए हैं। आपने पत्रकारिता को शुद्ध व्यवसाय बताया — तो क्या राजनीति और धर्म व्यवसाय नहीं हैं? यदि मीडिया सक्रिय न हो, तो राजनीति या धर्म की लूटमार और भ्रष्टाचार की खबरें समाज को कैसे मिल सकेंगी? आपने पुलिस का समर्थन किया, जबकि पुलिस की छवि तो समाज में बहुत खराब है।

प्रश्न 2: आपने सुझाव दिया है कि पुलिस जिसे अपराधी सिद्ध कर दे, उसे न्यायालय निर्दोष न मानकर “संदिग्ध अपराधी” माने और वह संदिग्ध व्यक्ति स्वयं को न्यायालय में निर्दोष सिद्ध करे। आपके कहे अनुसार तो पुलिस ही सत्ता की असली नियंत्रक बन जाएगी। मुझे छत्तीसगढ़ का नहीं पता, लेकिन उत्तर प्रदेश पुलिस का चेहरा तो साम्राज्यवादी ही है। पुलिस अपराधियों को संरक्षण भी देती है और निर्दोषों को भी जेल भेजने का काम करती है।

प्रश्न 3: आपने इस अंक में लिखा है कि लोकतंत्र में हिंसक उग्र प्रदर्शन, चक्का जाम, घेरा आदि को पूरी तरह रोक देना चाहिए। मैं आपसे सहमत हूं, लेकिन असंतोष को अभिव्यक्त करने का कोई न कोई माध्यम अवश्य होना चाहिए।

प्रश्न 4: आपने व्यवस्था परिवर्तन की बात कही है और उसकी रूपरेखा भी बनाई है। केंद्र सभा और केंद्र सरकार का भी आपने अलग-अलग स्वरूप बताया है। मेरे विचार से यह एक ठीक दिशा हो सकती है। वर्तमान भारत में चुनाव को छोड़कर कहीं लोकतंत्र नहीं दिखता। नौकरशाह एक तरफ भ्रष्ट बन गए हैं, तो दूसरी तरफ हमारे भाग्य विधाता भी बन गए हैं। न्यायपालिका भी न्याय नहीं कर पा रही है। लोगों को न अदालत से भय है, न जेल से। पाँच करोड़ मुकदमे लंबित हैं, उसके बाद भी मुकदमों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में हमारा विश्वास लोकतंत्र पर से उठता जा रहा है। जातिवाद लगातार बढ़ रहा है, भ्रष्टाचार यशवंत शर्मा को भी जातिवाद का सहारा मिल रहा है। आपका ‘माँ संस्थान’ ऐसे वातावरण में किस तरह कोई बदलाव कर पाएगा?

उत्तर 1: जिस तरह भारत में लोकतंत्र के तीन स्तंभ — न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका — पूरी ताकत से अपनी ताकत बढ़ा रहे हैं और धन की लूट मचा रहे हैं, इस लूट में हमारा चौथा स्तंभ मीडिया भी शामिल हो गया है। वर्तमान समय में मीडिया समाज को ब्लैकमेल अधिक कर रहा है। भारत में किसी अन्य व्यावसायिक संस्था को इतने विशेष अधिकार और पैसे की छूट नहीं है जितनी पत्रकारिता को है। सरकार जनता से मनमाना टैक्स वसूल करती है और मीडिया को बांटती है — यह उचित नहीं है।
यह कहना कि “मीडिया के सब लोग ईमानदार हैं और पुलिस के सारे लोग भ्रष्ट हैं” — ऐसे कथन से मैं सहमत नहीं हूं। पुलिस वालों को अपनी कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा लोकतंत्र के चारों स्तंभों को देना पड़ता है, जबकि मीडिया लेने वालों में शामिल है, देने वालों में नहीं। इसलिए मीडिया और पुलिस की तुलना करना व्यर्थ है।

उत्तर 2: आपने लिखा है कि न्यायपालिका ओवरलोडेड है — 10–10, 20–20 वर्षों तक मुकदमों के फैसले नहीं होते। इस संबंध में माँ संस्थान ने सुझाव दिया है कि हर आपराधिक मुकदमे को पुलिस न्यायालय निपटा दे। यदि पुलिस के निर्णय से कोई असंतुष्ट हो, तो वह न्यायालय में जा सकता है। पुलिस का फैसला न्यायालय में “संदिग्ध” माना जाएगा, सत्य नहीं, और पुलिस के फैसले को गलत सिद्ध करना अपीलकर्ता की जिम्मेदारी होगी। इससे न्यायालय में मुकदमे कम हो जाएंगे और फैसले भी जल्दी हो जाएंगे।
आपने पुलिस पर सवाल उठाया है — यदि वास्तव में पुलिस का बहुमत ऐसा ही है, तो आप बताने की कृपा करें कि पुलिस की जगह किस विभाग को यह कार्य दे दिया जाए? एक महीने के लिए न्यायाधीशों या पत्रकारों को यह कार्य सौंप कर देख लीजिए — क्या परिणाम आता है?

उत्तर 3 आपने लिखा है कि असंतोष को व्यक्त करने का कोई माध्यम होना चाहिए। मेरे विचार से लोकसभा के चुनाव में प्रतिवर्ष 108 सीटों पर चुनाव होंगे, जिनमें आप अपना असंतोष व्यक्त कर सकते हैं। यह चुनाव बारी-बारी से हर 5 सीटों में से एक पर होगा। इस तरह से पूरे देश का एक साथ विचार पता लग जाएगा।

उत्तर 4 आपने सही लिखा है कि चुनाव को छोड़कर कहीं लोकतंत्र नहीं दिखता, सब जगह भ्रष्टाचार है। इन्हीं सब को देखकर हम लोगों ने लोकतंत्र की जगह लोकस्वराज की व्यवस्था बनाई है। लोकस्वराज्य में अधिकांश विभाग केंद्र सभा के पास होंगे — पुलिस, सेना, विदेश, न्याय आदि विभाग केंद्र सरकार देख सकेगी। न्यायपालिका के पास मुकदमे बहुत कम हो जाएंगे, इसलिए न्यायाधीश भी घट जाएंगे और न्यायालय भी कम हो जाएंगे।

उत्तरार्थ

हम आपको ज्ञान तत्व भेजते रहे हैं, लेकिन मुनि जी के रिटायरमेंट के बाद हमारी कुछ आर्थिक मजबूरियाँ भी आ गई हैं। हम लोगों का काम भी बढ़ रहा है और खर्च भी बढ़ रहा है। इन परिस्थितियों में हम लोगों ने तय किया है कि जो लोग कम से कम वर्ष में ₹250 संस्था को देंगे, उनके निवेदन पर ही हम उन्हें ज्ञान तत्व पाक्षिक पत्रिका की छपी हुई प्रति पोस्ट से भेजेंगे।

अब तक ऐसे 742 आवेदन हमें मिल चुके हैं, जिन्होंने या तो इस तरह की मदद की है या ऐसी सहमति व्यक्त की है। हमने यह भी तय किया है कि यदि कोई अलग से व्हाट्सएप से कॉपी चाहेगा तो हम उन्हें ₹50 वार्षिक पर भेजते रहेंगे। अन्य सबके लिए वेबसाइट पर निशुल्क उपलब्ध रहेगी ही।

इस तरह आप कुछ नए नाम भी जोड़ सकते हैं। हम आपसे यह भी मदद चाहते हैं कि आप ज्ञान तत्व में जो भी पढ़ते हैं, उस पर अपने प्रश्न, विचार या प्रतिक्रियाएँ व्हाट्सएप के द्वारा, मोबाइल फोन के द्वारा अथवा पत्र के द्वारा हमें भेजने में मदद करें। इससे हमें आपसे उत्तर देने और चर्चा करने में सुविधा होगी तथा हमें अपनी बातों में सुधार करने का भी अवसर मिलेगा।